निवेदन

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आधुनिक हिन्दी कविता के गौरव हैं। गद्यकार के रूप में उनका अपना विशिष्ट मौलिक स्थान है। हम इस बात में अत्यन्त गौरव का अनुभव करते हैं कि उनकी सर्वप्रथम साहित्यिक गद्य रचना हमारे यहां से प्रकाशित हुई। उससे भी अधिक गौरव हम इस बात का करते हैं कि वह रचना हमारे स्थान को पवित्र कर उनके जैसे ऋषि ने प्रस्तुत की।

यद्यपि इस रचना की चर्चा बहुत दिनों से सुन पड़ती थी, किन्तु यह कहीं दीख नहीं पड़ती थी। निराला जी जैसे साहित्यकार की रचना किसी प्रकाशक के लिये गौरव की बात हो सकती है। हमारी यह हार्दिक इच्छा रही कि हम इस रचना को जो निराला जी की पहली गद्य रचना है हिन्दी जगत् के सम्मुख इस रूप में प्रस्तुत करें कि सब तक पहुँच सके। पहले संस्करण में इसका मूल्य दो रुपया था। दूसरे संस्करण में परिशिष्ट बढ़ा दिया गया है, तथा इसका मूल्य भी पहले संस्करण के, जो अत्यन्त मन्दी में हुआ था, आधे से भी कम रखा गया है। हिन्दी में निराला जी की सेवा जो महत्ता रखती है वह किसी से छिपी नहीं है। रवीन्द्रनाथ को उस युग में समझाने का हिन्दी जगत् को उन्होंने सर्वप्रथम सफल प्रयत्न किया था। हम इस कृति का दूसरा जन-सुलभ संस्करण प्रकाशित कर गौरव का अनुभव करते हैं। आशा ही नहीं विश्वास है कि हिन्दी की अमूल्य सम्पत्ति के प्रकाशन से हिन्दी का भला ही होगा। परिशिष्ट के लिये डा० महादेव साहा के हम हृदय से अनुगृहीत हैं।

—प्रकाशक

अनुक्रमणिका

प्रकाशकका वक्तव्य[1]

वहुत दिनोंसे मेरी प्रवल इच्छा थी कि विश्व-कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी चुनी हुई जगत प्रसिद्ध कविताओंका रसास्वादन हिन्दी—पाठकोंको भी कराऊ। वहुत दिनो तक मेरी यह इच्छा पूरी न हुई। जव तक कोई ऐसा प्रतिभाशाली लेखक न मिलता जो रविवावूके भावोको अच्छी तरह समझ कर हिन्दीभाषा-भाषियोंको उनकी चमत्कार पूर्ण कविताओंका अर्थ समझाता तव तक मेरी इस इच्छाका पूर्ण होना कठिन ही था। परन्तु जिस कामको मनुष्य करना विचार लेता है, उसमें दैवी सहायता भी अवश्य प्राप्त हो जाती है। एक दिन इसी विषय-पर श्रीयुक्त प० सूर्यकान्तजी त्रिपाठी "निराला" से मेरी वात-चीत हुई। मैंने रविवावूके काव्य विषयका उनमें वडा भारी ज्ञान पाया। वस फिर क्या था, मैंने उनसे अनुरोध किया कि आप एक ऐसा ग्रन्थ लिखें जिसमे विश्व-कविकी सव प्रकारकी सुन्दर और उपकारी कविताओंपर आलोचना हो ताकि उनके भावोको हिन्दीके पाठक अच्छी तरह समझ सकें। उन्होने मेरे इस अनुरोधको स्वीकार कर लिया, वोले "यह काम शीघ्र न होगा, इसलिये मै चाहता हूँ आपके यहाँ मासिक वेतनपर रहकर इस ग्रन्थका सम्पादन करूँ।" मैंने सहर्ष उनकी यह वात मान ली और उन्होने इस ग्रन्थ-रत्नके लिखनेमें हाथ लगा दिया।

श्री प० सूर्यकान्तजी त्रिपाठीने इस ग्रन्थका वडी सावधानीके साथ, जैसा मै चाहता था वैसा ही, सम्पादन किया। मुझे इस ग्रन्थकी एक-एक पक्ति साहित्य-रससे भरी हुई प्रतीत हुई। इस ग्रन्थके समाप्त होने पर यह निश्चय हुआ कि विश्व-कविकी सक्षिप्त जीवनी भी इसके आगे अवश्य लगायी जाये। उसमें भी हाथ लग गया। उस समय विश्व-कवि भारतमें नही थे, इसलिये उनकी जीवन-घटनाओंको सग्रह करनेमें प० सूर्यकान्तजी तथा मुझे वड़ी परेशानी उठानी पडी। वहुत खोजनेपर भी वंग-साहित्यमें उनकी कोई जीवनी या जीवनकी

---

१. प्रथम संस्करण से।

सिलसिलेवार घटनाएं हम लोगोको प्राप्त न हो सकी। तव हम लोगोने मिलकर उनके कुटुम्वियोसे जोडासाकूवाले भवनमें वातें पूछनी शुरू की। जिस प्रकार उन लोगोसे नोट मिले, उस प्रकार पण्डितजीने उन्हें लिपिवद्ध करना आरम्भ कर दिया, परन्तु जवतक किसी कामका समय नही आता तवतक वह किसी प्रकार भी पूरा नही होता, चाहे कितना भी उद्योग किया जाय।

अत वहुत खोज-ढूंढ करनेपर भी पण्डितजीको उनके विषयके पूरे नोट नही प्राप्त हुए। अव उन्होने वग-साहित्यके मासिक पत्रोकी फाइलें टटोलकर मसाला संग्रह करना विचारा। इस कार्यमें उन्हें वहुत दिन लग गये और उन्हे वाहर जानेके लिये लाचार होना पडा।

वह इसे लिखते-लिखते ही वाहर चले गये। तवसे उनको इस जीवनीके पूर्ण करनेका मौका ही नही मिला। उसी थोडेसे कामके लिये इस ग्रन्थका प्रकाशन सवा साल रुका रहा। अन्तमें मैंने अपने परम मित्र श्री पण्डित नरोत्तम जी व्याससे जीवनीका शेषाश पूर्ण करनेका अनुरोध किया। उनपर उस समय कामका वहुत ही वोझ था, तथापि उन्होने ग्रन्थका प्रकाशन रुका देखकर, उसे किसी प्रकार पूरा कर दिया। इसके लिये मै अपने मित्रका पूरा आभारी हूं।

मेरी रायमें यह ग्रन्थ साहित्यकी सुन्दर वस्तु है और विश्वकविके भावोको वतलाने वाला सुन्दर पथ-दर्शक है। इसमें विश्वकविकी चुनी हुई भावमय सुन्दर कविता देकर उसका हिन्दीमें अर्थ और उसके नीचे विश्वकविन किस भावमें प्रेरित हो कर वह कविता लिखी, इसका खुलासा कर दिया गया है। इसके पढनेसे हिन्दी-पाठक विश्वकविके भावोंको अच्छी तरह समझ सकेंगे और घर वैठे ही उनके साथ साक्षात्कार कर सकेंगे।

हमे आशा ही नहीं पूरा भरोसा है कि हिन्दी-पाठक इस ग्रथको अपना कर हमारी चिर अभिलाषाको सफल करेंगे। यदि पाठकोने इसे पसन्द कर हमारा उत्साह वढाया तो हम और भी सुन्दर साहित्य प्रकाशित करनेका प्रयत्न करेंगे।

लेखककी अनुपस्थितिमें यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, इसलिये कुछ गलतियोका रह जाना सम्भव है। अत उसके लिए हम पहले ही पाठकोसे क्षमा मांग लेना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

विनम्र—
निहालचन्द वर्मा
प्रकाशक

रवीन्द्र-कविता-कानन

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ

परिचय

रवीन्द्रनाथके जीवनके साथ वगभाषाका वडा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है, दोनोके प्राण जैसे एक हो। रवीन्द्रनाथ सूर्य है और वगभापाका साहित्य सुन्दर पद्म। रवीन्द्रनाथके उदयके पश्चात् ही वग-साहित्यका परिपूर्ण विकास हुआ। रवीन्द्रनाथके आनेके पहले इसके सौन्दर्यकी यह छटा न थी, न इसके सुगन्धकी इतनी तरगें ससारमे फैली थी। पश्चिमी विद्वानोंके हृदयमें वगभाषाके प्रति उस समय इस तरह का अनुराग न था। वे मधुलुब्ध भौंरेकी तरह इसकी ओर उस समय इतना न खिचे थे।

वह वङ्गभाषाके जागरणकी पहली अवस्था थी। कुछ वङ्गाली जगे भी थे, परन्तु अधिकाशमें लोग जग कर अगडाइया ही ले रहे थे। आंखोंसे सुषुप्तिका नशा न छूटा था। आलस्य और शिथिलता दूर न हुई थी। उस समय मधुर प्रभातीके स्वरोमें उन्हें सचेत करनेकी आवश्यकता थी। उनकी प्रकृतिको यह कमी खटक रही थी। जीवनकी प्रगति, रूखी कर्त्तव्यनिष्ठा और कर्म-तत्परताको सगीत और कविताकी सदा ही जरूरत रही है। विना इसके जीवन और कर्म वोझ हो जाते है। चित्त-उच्चाटके साथ ही ससार भी उदास हो जाता है, जीवन निरर्थक, नीरस और प्राणहीन-सा हो जाता है।

प्रकृतिकी कमी भी प्रकृतिके द्वारा ही पूर्ण होती है। जागरणके प्रथम प्रभातमें आवेश भरी भैरवी वगालियोने सुनी,—वह संगीत, वह तान, वह स्वर, वस जैसा चाहिये वैसा ही। जातिके जागरणको कर्मकी सफलता तक

पहुचानेके लिए, चलकर जगह-जगहपर थकी वैठी हुई जातिको कविता और सगीतके द्वारा आश्वासन और उत्साह देनेके लिए उसका अमर कवि आया, प्रकृतिने प्रकृतिका अभाव पूरा कर दिया। ये सौभाग्यमान पुरुष वङ्गालके जातीय महाकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर है।

उन्नीसवी शताब्दीके अन्तिम चरणसे लेकर वीसवी शताब्दीके पूर्ण प्रथम चरण तक तथा अवतक रवीन्द्रनाथ कविता साहित्यमें ससारके सर्वश्रेष्ठ महाकवि है। इनके छन्द अनगिनित आवर्तो और स्वर-हिलोरोकी मधुर अगणित थपकियोंसे पूर्ण थे और पश्चिमकी पथरीली चट्टानें ढहकर नष्ट हो गई—विषमताकी जगह समताकी सृष्टि हुई। प्रतिभाके प्रासादमें ससारने रवीन्द्रनाथको सर्वोच्च स्थान दिया। देखा गया कि एक रवीन्द्रनाथमें वडे-वडे कितने ही महाकवियोंके गुण एक साथ मौजूद है। परन्तु इस वीसवीं सदीमें जिसे प्राप्त कर ससार वसन्तोत्सव मना रहा है, वह कभी विकसित, पल्लवित, उच्छ्वसित, मुकुलित, कुसुमित, सुरभित और फलित होनेसे पहले अकुरित दशामें था।

अकुरको देखर उसके भविष्य-विस्तारके सम्वन्धमें अनुमान लगाना निरर्थक होता है। क्योकि प्राय सव अकुर एक ही तरहके होते है। उनमें होनहार कौन है और कौन नहीं, यह वतलाना जरा मुश्किल है। इसी तरह, वर्त्तमानके महाकविको उनके वालपनकी क्रीडाए देखकर पहचान लेना, उनके भविष्यके सम्वन्ध में सार्थक कल्पना करना, असम्भव है। क्योकि उनके वालपनमें कोई ऐसी विचित्रता नही मिलती, जिससे यौवन-कालकी महत्ता सूचित हो। जो लोग वर्त्तमानके साथ अतीतकी शृखला जोडते है, वे वर्तमानको देखकर ही उसके अनुकूल अतीतकी युक्तिया रखते है। रवीन्द्रनाथके वाल्यकी वह कृश नदी—उसका वह छोटासा तट, सव नदियोकी तरह पानीकी क्षुद्र चचलता, आनन्द-आवर्त्त, गीत और नृत्य, यह सव देखकर उसके भविष्य-विस्तारकी कल्पना कर लेना सरासर दुस्साहस है।

जिस समय रवीन्द्रनाथ अपने वालपनके क्रीडा-भवनमें केलियोंकी कच्ची दीवारें उठाने और ढहानेमें जीवनकी सार्थकता पूरी कर रहे थे, अपना आवश्यक प्रथम अभिनय खेल रहे थे, वह बङ्ग-साहित्यका निरा बाल्यकाल ही न

राममोहन राय

ई० विद्यासागर

हेमचन्द्र

था, न वह किशोर और यौवनका चुम्वन-स्थल था, वह किशोरताकी मध्यस्थ अवस्था थी। वाल्य डूव रहा था और सौन्दर्यमें एक खिचाव रह-रहकर आ रहा था। वाल्यकी स्मृति-विस्मृति एक दूरकी स्मृति-विस्मृति हो रही थी। वङ्गभापा उस समय नौ वर्षकी एक वालिका थी।

उस समय राजा राममोहनरायके द्वारा वगभापामें गद्यका जन्म हो चुका था। उनकी प्रभावशालिनी लेखनीकी वगला साहित्यमें मुहर लग चुकी थी। भाषाके शोवन और मार्जनमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर हाथ लगा चुके थे। कविताकी नयी ज्योति खुल चुकी थी—हेमचन्द्र मैदानमें आ चुके थे। वकिम-चन्द्र उपन्यास और गद्य साहित्यमें जीवन डाल चुके थे। नवीनचन्द्रकी ओजस्विनी कविताए निकल रही थी। मधुसूदनदत्तके द्वारा अमित्राक्षर छन्दकी सृष्टि हो गई थी।

इतना सव हो जानेपर भी वह वगभाषामे यौवनका शुभ भाव न था। जो कुछ था, वह वाल्य और किशोरताका परिचय मात्र ही था। किशोरी वगभापाके साथ इस समय अपनी मातृभूमिकी मृदुल गोदपर खेल रहे थे किशोर रवीन्द्रनाथ—वङ्गभाषाके यौवनके नायक—उसकी लीलाके मुख्य सहचर—उसके तीसरे युगके एकछत्र सम्राट।

वंकिमचन्द्र

मधुसूदनदत्त

कलकत्ताके अपने जोडासाको भवनमें १८६१ की ६ मईको रवीन्द्रनाथ पैदा हुए थे। इस वशकी प्रतिष्ठा वगालमें पहले दर्जेकी समझी जाती है। अलावा इसके इस वश को एक और सौभाग्य प्राप्त था जो श्रीमानोको अक्सर नही मिलता।

इस वंशमें लक्ष्मी और सरस्वतीकी पहले ही से समान दृष्टि है। इसके लिये ठाकुर-वंश बंगालमें विशेष प्रसिद्ध भी है। लक्ष्मी और सरस्वतीके पारस्परिक विरोधकी कितनी ही कहानियां हिन्दुस्तानमें मशहूर हैं। बंगालमें इन दोनोंकी मित्रताके उदाहरणमें सबसे पहले ठाकुर घरानेका नाम लिया जाता है। रवीन्द्रनाथके पिता स्वर्गीय महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर थे और पितामह स्वर्गीय द्वारकानाथ ठाकुर। शारदा देवी आपकी माता थीं।

ठा० देवेन्द्रनाथ

ठाकुर-वंश पिराली ब्राह्मण समाजकी ही एक शाखा है। इस वंशको 'ठाकुर' उपाधि अभी पांच ही छः पुश्तसे मिली है। इस वंशके साथ बंगालके दूसरे ब्राह्मणोंके समाजका खान-पान बहुत पहले ही से नहीं है। इस वंशके इतिहाससे मालूम हुआ कि पहले इस वंशकी मर्यादा इतनी बढ़ी-चढी न थी। वह बहुत साधारण भी न थी। समाजमें इसके पतित समझे जानेके कारण इसमें क्रान्ति करने वाली शक्तियोंका अभ्युत्थान होना भी स्वाभाविक ही था। ईश्वरकी इच्छा, क्रान्तिके भावोंके फैलानेके लिये इस वंशकी शक्ति को साधन भी यथेष्ट मिले और समाजसे दबकर मुरझानेके बदले देश और संसारमें उसने एक नयी स्फूर्ति फैलायी। धर्म, दर्शन, विचार-स्वातन्त्र्य, साहित्य, संगीत, कला और प्रायः सभी विषयोंमें ठाकुर घरानेकी इस समय एक खास सम्मति रहती है। संसारमें उसकी सम्मति आदरयोग्य समझी जाती है। सामाजिक बाधाओंके कारण विलायत-यात्रा, धर्म-संस्कार, साहित्य-संशोधन और सभ्यताके हरएक अंगपर अपनी कृतियोंके चिन्ह छोड़नेका इस वंशको एक शुभ अवसर मिला।

श्राद्धके समय इस घरानेमें दस पुरुषों तकके जो नाम आते थे वे ये हैं:—

"ओं पुरुषोत्तमाद बलरामो बलरामाद्धरहरो हरिहराद्रामानन्दो रामानन्दान्महेशो पंचानन पचाननाज्जये रामो जय रामान्नीलमणि नीलमणे रामलोचनो रामलोचनाद्द्वारकानाथो नम पितृपुरुषेभ्यो नम पितृपुरुषेभ्य।"

"पुरुषोत्तम—बलराम—हरिहर—रामानन्द—महेश—पंचानन—जयराम—नीलमणि—रामलोचन—द्वारकानाथ—देवेन्द्रनाथ—रवीन्द्रनाथ—रथीन्द्रनाथ।

ठाकुर-वश भट्टनारायण का वश है। भट्टनारायण उन पाच कान्यकुब्जोमें हैं जिन्हें आदिशूरने कन्नौजसे अपने यहा रहनेके लिए बुलाया था और वगालमें खासी सम्पत्ति देकर उन्हें प्रतिष्ठित किया था। सस्कृत के वेणी-सहार नाटकके रचयिता भट्टनारायण यही थे। जिनका नाम पितृपुरुषोकी वश-सूचीमें पहले आया है, वे पुरुषोत्तम यशोहर जिलेके दक्षिण डिहोके रहने वाले पिराली वंशके एक ब्राह्मणकी कन्यासे विवाह करके पिराली हो गये थे। ये यशोहरमें रहने भी लगे थे।

इसी वशके पचानन यशोहरसे गोविन्दपुर चले आये। यह मौजा हुगली नदीके तट पर वसा है। यहाँ नीच जातियाँ ज्यादा रहती थी। ये उन्हें "ठाकुर" कहकर पुकारती थी। वंगालमें ब्राह्मणो के लिये यह सम्बोधन आम-फहम है। इस तरह, पचाननके बादसे इस वशकी यही "ठाकुर" उपाधि चली आ रही है।

गोविन्दपुरमें जव पचानन पहले पहल गये और वसे, उस समय भारतमें अग्रेज पैर जमा ही रहे थे। वहाँके अग्रेजोंसे पचाननकी जान पहचान हो गई। अग्रेजोंने उनके लडकेको जिनका नाम जयराम था, २४ परगनेका जमीदार मुकर्रर कर दिया। जयरामने कलकत्तेके पथरिया हट्टमे एक मकान वनवाया और कुछ जमीन भी खरीदी। १७५२ ई० में उनका देहान्त हो गया। उनके चार पुत्र थे। उनमें उनके दो लड़कोने, नीलमणि और दर्पनारायणने कलकत्ते के पथरिया हट्टा और जोडासाकूमें दो मकान वनवाये। इस वशकी सम्पत्तिका अधिक भाग रवीन्द्रनाथके पितामह द्वारकानाथने स्वय उपार्जित किया था और उनके ऋणके कारण उसका अधिकाश चला भी गया।

इस वशका धर्म पहले शुद्ध सनातन धर्म ही था। उस समय ब्राह्म-समाज वीजरूपमें भी न था। इसके प्रतिष्ठाता रवीन्द्रनाथके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ थे। इस समाजकी प्रतिष्ठा कई कारणोंसे की गयी थी। पहला कारण तो यही है कि ब्राह्मण-समाजमें इस वशकी प्रतिष्ठा न थी। दूसरे इस वशके लोगोंमें शिक्षा और सस्कृति वढ गयी थी। भावोमें उदारता आ गयी थी। य विलायत-यात्राके पक्षमें थे। द्वारकानाथ विलायत हो भी आये थे। इन

कारणोंसे समाजकी दृष्टिमें इस वशकी जो जगह रह गई थी, वह भी जाती रही। इस वशको इसकी विल्कुल चिन्ता नही हुई। ज्ञान-विस्तारके साथ ही इसकी सुरुचि भी परिष्कृत होती गई। तुच्छ अभिमानकी जगह उन्नत आर्य-सस्कृतिका अभिमान पैदा हुआ। जाति और देशके प्रति प्रेम और प्रतिभाने इस वशको गौरवके शिखरपर स्थापित किया। रवीन्द्रनाथका रग और रूप देखकर आर्योंके सच्चे रग एव रूपकी याद आ जाती थी। समाज और देशके मुख्य मनुष्यो द्वारा वाधा प्राप्त होनेके कारण इस वशके लोगोको अपने विकासके पथपर अग्रसर होनेकी आत्म-प्रेरणा हुई। ये वढे भी और वहुत वढे। इनकी प्रतिभामें नयी सृष्टि रचनेकी जो शक्ति थी उसने देश और साहित्यका वडा उपकार किया, दोनोमें एक युगान्तर पैदा कर दिया। जिसमे सृष्टिके हजारो मनुष्योको उस मार्गपर चलनेकी शक्ति है, जिसका ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभवपर टिका हुआ है, जिसकी वुद्धि अपने विचारोंसे अपनेको धोखा नही देती, वह हजार उपेक्षाओ और असख्य वन्धनोमें रहनेपर भी अपनी स्वाधीन गतिके लिये रास्ता निकाल लेता है। इन लोगोने भी ऐसा ही किया। अपने लिये आर्यसस्कृतिके अनुसार धर्म और समाजकी सुविधा भी कर ली। इनके यहा अभी उस दिनतक देवी-देवताओकी पूजा हुआ करती थी। इन लोगोने ब्राह्म-समाजकी स्थापना की और वेदान्त वेद्य ब्रह्मकी उपासना करने लगे। रवीन्द्रनाथके पिता, महर्षि देवेन्द्रनाथ तो पक्के ब्राह्मसमाजी थे, परन्तु इनकी माताके हृदयमें हिन्दूपनकी छाया, मूर्ति पूजनके सस्कार, मृत्युके अन्तिम समय तक मौजूद थे।

देशकी तात्कालिक परिस्थिति जैसी थी, ईसाई धर्म जिस वेगसे वगालमें धावा मार रहा था, सनातनधर्मियोकी सकीर्णता जिस तरह क्षुद्र होती जा रही थी, यश प्राप्तिकी प्यास जिस तरह वगालियोंको पश्चिमकी ओर वढा रही थी, उन कारणोंसे उस समय एक ऐसे धर्मका उद्भव होना आवश्यक था जो वाहरी देशोंसे लौटे हुए हिन्दुओको भारतीयताके घेरेमें रखकर उनमें पारस्परिक ऐक्य और सहानुभूति वनाये रह सके—जाति-भिन्नतामें भी एकताके वन्धनोंको दृढ कर सके। दूसरी दृष्टिसे, जिस तरह पण्डितोकी सकीर्णता

सक्रिय थी, उसी तरह देशमें उदारताकी एक प्रतिक्रिया होना आवश्यक हो गया था, यह अवश्यम्भावी था और प्राकृतिक भी था।

पहले पहल राजा राममोहनरायके मस्तिष्कमे ब्राह्मसमाजकी स्थापनाके भाव पैदा हुए थे। परन्तु ब्राह्मसमाजको स्थायी रूप वे नही दे सके। इससे पहले ही उनकी मृत्यु हो गयी। इसे स्थायी रूप मिला, रवीन्द्रनाथके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथके द्वारा। जिस समय देवेन्द्रनाथके हृदयमें अद्वैत ब्रह्मकी उपासनाकी आशा दूसरोकी दृष्टिसे बचकर पुष्ट हो रही थी, उस समय उनके यहाँ शालिग्रामकी पूजा बडे धूमधामसे की जाती थी। परन्तु, जिस बीजका अकुर उग चुका था, उसका फलीभूत होना स्वाभाविक था। अस्तु १८३८ ई० मे महर्षिने तत्वरजनी नामकी एक सभाकी प्रतिष्ठा की। इसकी स्थापना उन्होंने अपने घरपर ही की थी। इसके दूसरे अधिवेशनके समय विद्यावागीश रामचन्द्रको उन्होंने बुलाया। विद्यावागीश महोदयने इस सभाका नाम तत्व-रजिनी बदलकर तत्वबोधिनी रखा। १८४२ ई० मे यह सभा निर्जीव ब्रह्म-समाजके साथ मिला दी गयी। इसी साल महर्षि देवेन्द्रनाथ भी ब्राह्मसमाजी हो गये। इसमें नया जीवन डालने और कुछ दूसरे कारणसे देवेन्द्रनाथ महर्षि कहलाये। उनके सुपुत्रोने इस कार्यमें उनकी सहायता की। किसी समय रवीन्द्रनाथने बडी योग्यता और तत्परताके साथ पिताके इस कार्यका सचालन किया था।

रवीन्द्रनाथका बालपन सुखकी कल्पनाओ और सरल केलियोंके भीतर ससारका प्रथम परिचय प्राप्तकर मधुर और बडा ही सुहावना हो रहा था। रवीन्द्रनाथ उच्च वशके लडके थे। उन्हे कोई अभाव न था। परन्तु उन्हें बालपनमें दीनताकी गोदपर सहानुभूतिकी प्रार्थना करते हुए देखकर हृदयको अपार सुखकी प्राप्ति होती है। उन्हे ऐसा ही साधारण जीवन बिताना पडा था।

रवीन्द्रनाथ पढनेके लिये ओरियण्टल सेमीनरीमें भर्ती किये गये। उस समय इनके स्कूल जाते हुए एक ऐसी ही घटना घटी। पहले इनके दो साथी उस स्कूलमें भर्ती किये गये। वे इनसे उम्रमे कुछ बडे थे। उन्हें बग्घी-

पर चढकर स्कूल जाते हुए और स्कूलसे लौटकर वाहरके मनोरजक दृश्योका वर्णन करते हुए सुनकर रवीन्द्रनाथको स्कूल जानेकी वडी लालसा हुई। परन्तु इनकी उम्र उस समय वहुत थोडी थी। लोगोने समझाया कि इस समय तो स्कूल जानेके लिये मचल रहे हो, परन्तु दो-चार दिनके वाद फिर जी चुराओगे। यह भय वालक रवीन्द्रनाथको सत्याग्रहसे विचलित न कर सका। आसुओंके वलपर वालककी विजय हुई। दूसरे दिन रवीन्द्रनाथ ओरियण्टल सेमीनरीमें वच्चोकी कक्षामें भर्ती कर दिये गये। यहाँ वच्चोपर जैसा शासन था, इससे रवीन्द्रनाथको वहुत शीघ्र यहाँकी पढाईमे जी छुडाना पडा।

ओरियण्टल सेमीनरीसे वालक रवीन्द्रनाथको नार्मल स्कूलमें भर्ती कर दिया गया। उम्र इस समय भी इनकी वहुत थोडी ही थी। यहाँ दूसरी ही दिक्कतका सामना करना पडा। यहाँ वच्चोंसे अग्रेजीमें गाना गवाया जाता था। अगरेजी थियोरिया और अगरेजी गाने सिखलाये जाते थे। हिन्दुस्तानी वच्चोंके गलमें मजकर एक अगरेजी गानेकी ऐसी शकल वन गई थी कि उस पर इस समयके शब्द-तत्ववेत्ताओको पाठोद्धारके लिये विचार करना चाहिये। रवीन्द्रनाथको इस समय भी उस गानेकी एक लाइन न भूली।

"कलोकी पुलोकी सिंगल
मेलालि मेलालि मेलालि।"

इसके उद्धारके लिये रवीन्द्रनाथको वडी मिहनत उठानी पडी। फिर भी "कलोकी" की सफल कल्पना नही कर सके। वाकी अशका उन्होंने इस तरह उद्धार किया—"Full of glee, Singing merrily ! Singing merrily !! Singing merrily !!!"

नार्मल स्कूलमें विद्यार्थियोंके सहवासको रवीन्द्रवाबूने वहुत ही दूषित वतलाया है। जब लडकोंके जलपानकी छुट्टी होती थी, उस समय नौकरके साथ बालक रवीन्द्रनाथको एक कमरेमें बन्द रहना पडता था इस तरह वालकोंके उत्पातसे वे आत्मरक्षा करते थे। एक दिन वहाँ किसी शिक्षकने

अपशब्द कह दिये। तबसे उनके प्रति बालक रवीन्द्रनाथकी अश्रद्धा हो गयी। फिर बालकने उस शिक्षकके किसी प्रश्नका कभी उत्तर नही दिया।

रवीन्द्रनाथने सात ही वर्षकी उम्रमें एक कविता पमार छन्दमें लिखी थी। इसे पढकर इनके घरवालोको बडी प्रसन्नता हुई। यह कविता रवीन्द्रनाथने अपने भानजे ज्योति स्वरूपसे उत्साह पाकर लिखी थी। उम्रमें वे इनसे बडे थे, अंग्रेजी स्कूलमें पढते थे। इनके बडे भाई स्वर्गीय द्विजेन्द्रनाथको यह कविता पढ कर बडा ही हर्ष हुआ। उन्होंने बहुतेरोको कविता दिखायी और एक दिन नेशनल पेपरके एडीटर नवगोपाल बाबूके आने पर उन्हें भी कविता सुनायी गयी। वर्तमानकालके समालोचकोंकी तरह अनुदार और जरा-ी सम्मति देने वालोंकी उस समय भी कमी न थी। नवगोपाल बाबू भी आखिर सम्पादक थे, गंभीरतापूर्वक हसे, दबे स्वरोमे कहा—"हाँ, अच्छी तो है, जरा द्विरेफ खटकता है।" नवगोपाल बाबू कविताके मर्मज्ञ थे या नही, यह तो हम नहीं कह सकते, परन्तु इतना हमें मालूम है कि उनकी कविता-मर्मज्ञताके सम्बन्धमें उस समयके बालक रवीन्द्रनाथके जो भाव थे वे अब तक भी नही बदल सके, न अब तक वह द्विरेफ शब्द रवीन्द्रनाथको खटका।

बचपनमें रवीन्द्रनाथपर नौकरोका शासन रहता था। इन्हींके बीचमें वे पल रहे थे। रवीन्द्रनाथके पिता उन दिनो पर्यटन कर रहे थे। अक्सर बाहर ही रहा करते थे। रवीन्द्रनाथको माताकी गोदपर पहली सीढीके पार करनेका सौभाग्य न मिला। माता उस समय रोग-ग्रस्त रहती थीं। रवीन्द्रनाथकी देख-रेख नौकरों द्वारा ही हुआ करती थी। बडे घरोंके लड़के बालपनमें भोजन-वस्त्रका अभाव नही महसूस करते। यह बात रवीन्द्रनाथके लिये न थी—भोजन और वस्त्रका सुख भोग उस समय इन्हें नही मिला। सुख उन्हें उनकी क्रीडाए देती थी। उन्हींकी छायामें वे प्रसन्न होते थे। दस वर्ष तक रवीन्द्रनाथको मोजा भी नही मिला। जाड़के दिनोंमें दो सादे कुर्ते पहन कर जाडा काटना पडता था। रवीन्द्रनाथने अपने बालपनको जिन शब्दोंमें याद किया है, उनसे वे हर एक पाठककी सहानुभूति आकर्षित कर लेते हे। एक जगह उन्होंने लिखा है—"इस तरहके अभावोंसे मुझे कष्ट न था। परन्तु

जब हमारे यहांका दर्जी इनायतखा कुर्ते में जेब लगाना भी अनावश्यक समझता था तब दु ख अवश्य होता था।" एक जोडा स्लीपरोंसे बालकको जूतेका शौक पूरा कर लेना पडता था। इस तरहके स्लीपरोंमे रवीन्द्रनाथकी इतनी सहानुभूति थी कि जहां उनके पैर रहते वहां जूतोकी पहुंच न होती थी।

नौकरोंके प्रभावका एक उदाहरण लीजिये। इनके यहां एक नौकर खुलना जिलेका रहता था। नाम श्याम था। था भी श्याम ही। एक रोज बालक रवीन्द्रनाथको कमरेमें बैठाकर चारो ओरसे उसने लकीर खींच दी और गम्भीर होकर कहा, इसके बाहर पैर बढाया नहीं कि आफतका पहाड टूटा। सीताकी कथा रवीन्द्रनाथ पढ चुके थे। वे नौकरकी बातपर अविश्वास न कर सके। वे चुपचाप वहीं बैठे रहे। इस तरह कई घण्टे उन्हें बैठे रहना पडा। झरोखेसे अपने घरके पक्के घाटपर लोगोंकी भीड, बगीचेमें चिडियोकी चहक, पूर्व ओर की चहारदीवारीके पासका चीनावट, पडोसियोका आना, नहाना, नहानेके प्रकार भेद, ये सब दृश्य बालक रवीन्द्रनाथको उस कैदमें भी धैर्य और आनन्द देनेवाले उनके परम प्रिय सहचर थे। उनके बालपनका अधिकाश समय प्रकृतिके दूसरे छोरकी मोहिनी सृष्टिके साथ उन्हे मैत्रीके बन्धनमें बांधकर न जाने किस अलक्षित प्रेरणासे उनके भावी जीवनके आवश्यक अगका सुधार कर रहा था। घरकी प्रकृतिके साथ रवीन्द्रनाथका एक बडा ही मधुर परिचय हो गया था। उनके किशोर समयके आते ही यह प्रकृतिके सुकुमार कविताके रूपमें प्रगट हुआ।

प्रकृतिदर्शनकी कितनी ही कथाएं बालक रवीन्द्रनाथकी जीवनीमें मिलती हैं। विस्तार भयसे उनका उल्लेख हम न करेंगे। सक्षेपमें इतना कह देना बहुत होगा कि जीवनकी इस अवस्थाको देखकर कविके भावी जीवनका कुछ अनुमान हो जाता है।

नार्मल स्कूलके एक शिक्षक रवीन्द्रनाथको घरपर भी पढाते थे। ये नीलकमल घोषाल थे। स्कूलकी अपेक्षा घरपर रवीन्द्रनाथको अधिक पढना पडता था। सुबहको लँगोट कसकर एक काने पहलवानसे ये जोर करते थे। कुछ

ठंडे होकर, कुर्ता पहन, पदार्थ-विद्या, मेघनाद वध काव्य, ज्यामिति, गणित इतिहास, भूगोल आदि अनेक विषयोका अभ्यास करना पडता था। फिर स्कूलसे लौटकर ड्राइग और जिमनास्टिक सीखते थे। रविवारको गाना सिखलाया जाता था। सीतानाथ दत्त महाशय मन्त्रोके द्वारा कभी-कभी पदार्थ-विज्ञानकी शिक्षा देते थे। कैम्वल मेडिकल स्कूलके एक विद्यार्थीसे अस्थि-विद्याकी शिक्षा मिलती थी। एक तारोंसे जोडा हुआ नर ककाल पाठागारमें लाकर खडा कर दिया गया था। उधर हेरम्व तत्वरत्न मुकुन्द सच्चिदानन्दसे आरम्भ कर 'मग्धवोध' व्याकरण रटा रहे थे। वालक रवीन्द्रनाथको अस्थि-विद्याके हाड़ो और वोददेवके सूत्रोंमे हाड ही अधिक सरस और मुलायम जान पडते थे। वगभाषाकी शिक्षाके परिपुष्ट हो जाने पर इन्हें अगरेजीकी शिक्षा दी जाने लगी।

पहले पहल इन्हें प्यारीलालकी लिखी पहली और दूसरी पुस्तक पढायी गयी, फिर एक पुस्तक आक्सफोर्ड रीडिगकी। अंगरेजीकी शिक्षामें रवीन्द्रनाथका जी न लगता था। पढते-पढते शाम हो जाती थी। मन अन्त पुरको ओर भागा करता था। दिन भरकी मिहनतके वाद थका हुआ मन क्रीडाकी गोद छोड कर विदेशी भाषाके निर्दय वोझके नीचे दवा रहना कैसे पसन्द करता? रवीन्द्र-नाथको इस समय की दयनीय दशाकी स्मृतिमे लिखना पड़ा है—"उस अग्रेजी पुस्तककी जिल्द, काली भाषा क्लिष्ट विषयोंको, विद्यार्थियोंसे जरा भी सहानुभूति नही, वच्चोपर उस समय माता सरस्वतीकी कुछ भी दया नही देख पड़ी। प्रत्येक पाठ्य-विषयकी ड्योढीपर सिलेवुलोंके द्वारा अलग किया हुआ उच्चारण, और ऐकसेण्टोको देखिये तो आप समझेंगे कि किसीकी जान लेनेके लिये वन्दूकपर सगीन चढायी गयी है।" अंग्रेजीकी पढ़ाईसे रवीन्द्रनाथकी उदासीनता देखकर मास्टर सुवोधचन्द्र इन्हें वहुत धिक्कारते थे। इनके सामने एक दूसरे छात्रकी प्रशसा करते थे। परन्तु इस उपमान और उपमेयकी छुटाई वडाई यानी इस समालोचनाका प्रभाव रवीन्द्रनाथपर वहुत कम पडता था। कभी-कभी इन्हें लज्जा तो आती थी, परन्तु उस काली पुस्तकके अवेरेमें पैठनेका दुस्साहस भी एकाएक न कर सकते थे। उस समय शातिका एकमात्र सहारा

प्रकृतिकी कृपा होती थी। प्राय देखा जाता है, क्लिष्ट विपयोंके दुरूह दुर्गके अन्दर पैठनेके लिये हाथ-पैर मारकर थके हुए वच्चेके प्रति दया करके प्रकृति देवी उसे निद्राके आराम-मन्दिरमें ले जाती है। रवीन्द्रनाथकी भी यही दशा होती थी। पुतलियाँ नीदकी सुखद मदिरा पीकर पलकोंकी गोदमें शिथिल हो कर धीरे-धीरे मुंद जाती थीं। इतनेपर भी इन्हें विदेशी शिक्षाकी निर्दय चेष्टाओंसे मुक्ति न मिलती थी। आँखोमें पानीके छींटे लगाये जाते थे। इस दुर्दशासे मुक्तिके दाता इनके बडे भाई थे। अपने छोटे भाईकी शिक्षा-प्रगतिको प्रत्यक्ष करते ही उन्हें दया आ जाती थी। वे मास्टरसे कहकर इन्हें छुट्टी दिला देते थे। आश्चर्य तो यह है कि वहाँसे चलकर बिस्तरेपर लेटनेके साथ ही रवीन्द्रनाथकी नीद भी गायब हो जाती थी।

नार्मल स्कूल छोडकर ये वगाल एकाडमी नामके एक फिरगी स्कूलमें भर्ती हुए। वहाँ भी अग्रेजीसे इन्हें विशेष अनुराग न था। वहाँ कोई इनकी निगरानी करनेवाला भी न था। वह स्कूल छोटा था। उसकी आमदनी कम थी। रवीन्द्रनाथने लिखा है—"स्कूलके अध्यक्ष हमारे एक गुणपर मुग्ध थे। हम हर महीना, समय समयपर, स्कूलकी फीस दे दिया करते थे। यही कारण है कि लैटिनका व्याकरण हमारे लिये दुरूह नही हो सका। पाठ-चर्चाके अक्षम्य अपराधसे भी पीठ अक्षत बनी रहती थी।"

वचपनमें कविता लिखनेकी इन्होंने एक कापी आसमानी रगके कागजोंकी वनाई थी। उसके कुछ पद्य निकल चुके है। होनहार तो ये पहले ही से थे। इनकी पहलकी कविताओंमें प्रतिभा यथेष्ठ मात्रामें मिलती है। लेकिन, निरे वचपनसे कविता करते रहने पर भी, इन्हें, कुछ अगरेज, कौले और ब्रौनिंग की तरह, बचपनका प्रतिभाशाली कवि नही मानते। कुछ भी हो, हमें रवीन्द्र नाथके उस समयके पद्योंमें भी बडी ही सरस सृष्टि मिलती है।

पश्चिमी-ससार रवीन्द्रनाथको नदीका कवि (River poet) मानता है। है भी रवीन्द्रनाथ नदीके कवि। उनकी कविताओंमें जगह-जगह, अनक बार, नदीका सौन्दर्य, प्रवाह और तरगोंकी मनोहरता दिखलायी गयी है। सफल

भी रवीन्द्रनाथ इन कविताओ में वहुत हुए है। नदीकी कविता उनके लिये स्वाभाविक है। वगाल नदियोंके लिये प्रसिद्ध है। उधर रवीन्द्रनाथके जोवनका वहुतसा समय, नदियोंके किनारे, उनके प्राकृतिक सौन्दर्यकी उदार गोदमे वीत है। सौन्दर्य-प्रियता रवीन्द्रनाथकी प्रकृतिमें उनके पिताकी प्रकृतिसे दूसरी तरहकी है। उनके पिता हिमालय शिखर-सकुल प्रदेश पसन्द करते थे, परन्तु रवीन्द्रनाथको, समतल भूमिपर, दूर तक फैली हुई, हरी भरी, हँसती हुई, चचल तथा विराट प्रकृति अधिक प्यारी है। जिन्हें रवीन्द्रनाथ आदर्श मानते हैं, वे कालिदास भी पर्वत-प्रिय कवि थे। रवीन्द्रनाथकी मौलिकताकी यहाँ भी स्वतन्त्र चाल है।

पन्द्रहवें सालसे पहले ही रवीन्द्रनाथ कुछ कविताएँ कर चुके थे। उनकी पहलेकी कविताएँ और समालोचना 'ज्ञानाकुर' में निकलती थी। उन दिनो 'भारती'मे भी ये लिखा करते थे। पहली और सबसे वडी इनकी कवि-कथा नामकी कविता 'भारती' में निकली थी। इस समय यह पुस्तिकाकार विकती है। कहते हैं कि जीवनकी इस अवस्थामें अगरेज कवि शेली इन्हे वहुत प्यारा था। चूँकि यह उनकी कविताकी पहली ज्योति थी—यौवन-कालकी पहली रागिनी थी, इसलिये भावुकता और सर्वलोक प्रियता इसमें वहुत है। जीवनकी अधखुली अवस्थामें स्वभावत. ससारकी ओर वहकर, अपनी धारामें उसे वहा ले चलनेकी भावनाकी प्रतिमा हरएक कविमें होती है। यही हाल उस समय रवीन्द्रनाथका भी था। उनकी निर्जनप्रियता भी हद दर्जेकी थी। अपने विकासकी उलझनोको एकान्तमें वैठे हुए दो-दो और तीन-तीन घण्टे तक वे सुलझाते रहते थे। हृदयकी आँख इस तरह खुल रही थी। कुछ दिनो वाद वनफूलके नामसे इनकी एक दूसरी पुस्तक निकली। यह उनकी ग्यारहसे पन्द्रह साल तक की कविताओंका सग्रह था। उन कविताओंसे कुछ ही कविताए इस समयके सग्रहमें रह गयी हैं। वीसवें सालके अन्दर ही अन्दर 'गाथा' नामकी एक पुस्तक और उन्होने कविता-कहानीमें लिखी। रवीन्द्रनाथके अगरेज समालोचक लिखते हैं कि इसे पढ़कर जान पडता है कि रवीन्द्रनाथपर इस समय स्काट का प्रभाव था। बीसवें सालके अन्दर ही

भानु-सिंह-संगीतोंके बीस गाने तक उन्होने लिख डाले थे। कहते हैं कि इस समयसे रवीन्द्रनाथका यथार्थ साहित्यिक जीवन शुरू होता है।

लेकिन, इस बीसवें सालसे पहले जब वे सोलह सालके थे, २० सितम्बर, १८७७ को, पहली बार वे विलायतके लिये रवाना हुए थे और साल भर बाद ४ नवम्बर १८७८ को बम्बई वापस आये। "भारती"में इनकी योरप-पर्यटन पर लिखी गई कुछ चिट्ठियाँ निकल चुकी हैं जिससे सूचित हो जाता है कि योरप उस समय इनके लिये सन्तोषप्रद नहीं हो सका। अरुचिकर चाहे जितना रहा हो, परन्तु सर्वांशत योरप इनके लिये निष्फल नहीं हुआ। सबसे बड़ा लाभ तो इन्हें यही हो गया कि जिस महत्ताको रूप-रस-गन्ध-स्पर्श शब्द और संगीतों द्वारा ये सार्वभौमिक करनेके लिये पैदा हुए थे उसके समुद्बोधनके लिये इन्हें वहाँ यथेष्ट साधन मिल गये। पहली बात तो यह कि इन्होने पृथ्वीका विशाल भाग उचित उम्रमें प्रत्यक्ष देख लिया। दूसरी बात, संसारकी बहुतसी सभ्य जातियोंकी शिक्षा और उनके आचार-व्यवहारोंकी परीक्षा हो गयी। तीसरे, प्राकृतिक दृश्योंकी विचित्रता और हर प्रकृतिके मनुष्योंका बाहरी प्रकृतिके साथ आभ्यन्तरिक मेल, उसका वैज्ञानिक कारण, वहाँ जाने पर समझमें आ गया। बर्फका गिरना और दूर फैली हुई बर्फीली भूमिकी शोभा भी वहाँ दृष्टिगोचर हो गयी। अस्तु विलायतपर लिखे गये रवीन्द्रनाथके पत्र बड़े सरस हैं। यों भी रवीन्द्रनाथ बंगालके पहले दर्जेके पत्र लेखक हैं। कभी-कभी बंगलाके पत्रोंमें इनकी चिट्ठियाँ छपा करती थीं। विलायतसे लौटनेके कुछ ही दिनोंके बाद 'मेघनाद वध' काव्यपर इनकी एक प्रतिकूल समालोचना निकली। इस पैनी समालोचनापर अब ये हँसते हैं। कहते हैं, वह शक्तिकी पहली अवस्था थी जब 'मेघनाद-वध' काव्यपर लिखी गयी मेरी समालोचना प्रकाशित हुई थी। उस समय मुझे यह ज्ञान न था कि मैं बंगालके अमर कविकी प्रतिकूल समालोचना लिख रहा हूँ।

इन्हीं दिनों रवीन्द्रनाथका 'करुणा' उपन्यास निकला। इस समय अक्सर कवि करुणाके पथिक हुआ करते हैं। संसारके दुःख और दाहके चित्रोंसे उनकी पूर्ण सहानुभूति रहा करती है। 'भग्न हृदय' नामक इस समयकी लिखी हुई

एक दूसरी पुस्तकमें ऐसे ही भावोका समावेश हुआ है। यह पद्य-बद्ध नाटक है। यह रवीन्द्रनाथकी अठारह सालकी उम्रमें लिखा गया था। सोलहवें सालसे तेइसव साल तककी रवीन्द्रनाथकी स्थिति वडी चचल थी। कोई शृखला तव न हो पायी थी। उद्देश्य सदा ही परिवर्तित होते रहते थे।

१८८१ से १८८७ तकका समय रवीन्द्रनाथके लिये सच्चा साहित्यिक काल है। इस समय उनकी प्रतिभा पूर्ण रूपसे विकसित हो गई थी। इसी समय उनकी 'सन्व्या-सगीत' नामक कविता पुस्तक निकली थी। इसके निकलनेके साथ ही, वगाल भरमें रवीन्द्रनाथकी प्रतिभा चमक उठो। उस समयके वड़े-वडे विद्वानो तकने रवीन्द्रनाथका लोहा मान लिया। कविताकी दृष्टिसे इनकी ये कविताएँ वडे महत्वकी है। उनमें एक विचित्र ढगकी नवीनता आ गयी है जो उस समयके कवियो और समालोचकोंके लिये विल्कुल एक नयी चोज थी। 'वाल्मीकि प्रतिमा' और 'काल-मृगया' दोनो ही सगीत-काव्य है। रवीन्द्रनाथकी नस-नसमें घारा वह रही है। इनके अंगरेज समालोचक सगीतकी दृष्टिसे इन्हे वहुत ऊँचा स्थान देते हैं। उस स्थानके लिये ये योग्य भी हैं। भावोंके अतिरिक्त इनके शब्दोमें वडा ज़ोर है और छन्दोका वहाव जैसा वे चाहे विल्कुल वैसा ही है। भाषा, भाव और छन्दोपर इतना वडा अधिकार, इन पक्तियोंके लेखकको, और कही नहीं मिला। उस दिन रवीन्द्र-नाथपर दी गयी वगलाके प्रसिद्ध औपन्यासिक शरतवावूकी यह राय कि "मेरा विश्वास है, भारतमें इतना वडा कवि नही पैदा हुआ" वहुत अशोमें सच है। मुझे भी विश्वास है कि तुलसीको छोडकर मुसलमानी शासन-कालसे लेकर आज तक इतना वडा कवि भारतमें नही पैदा हुआ।

'सन्व्या-सगीत' अलक्ष्य भावसे 'प्रभात-सगीत' की ओर इशारा करती है, जैसे कुछ दिनोंमें इस नामकी पुस्तक भी निकलनेवाली हो। ऐसा ही हुआ। 'सन्ध्या-सगीत' के प्रकाशित हो जानेपर कुछ दिनोंमें 'प्रभात-सगीत' भी निकला। इसने वगला-साहित्यमे धूम मचा दो। इसकी भाषा, इसके भाव, इसके छन्द, सव विचित्र ढगके, एक विल्कुल अनूठापन लिये हुए। इस तरहकी कविता वगालियोने पहले ही पहल देखी थी, और निस्सन्देह कविताएँ

कवित्वकी हद्द तक पहुँची हुई है। बहुतोंको यहाँ तक भी विश्वास है कि रवीन्द्रनाथकी कविताओंमें 'प्रभात-सगीत' के पद्य सर्वश्रेष्ठ है, कमसे कम ओज और छन्दोंके बहावके विचारसे तो अवश्य ही श्रेष्ठ है। फिर इनका 'विविध-प्रसग' निकला। इसकी भाषा बिल्कुल नये ढगकी है। अपने पुराने उपन्यासोमें रवीन्द्रनाथ जिसे आदरकी दृष्टिसे देखते है, वह 'बहू ठाकुरानीर हाट' भी इसी समय निकला था।

रवीन्द्रनाथके 'प्रभात-सगीत' की कविताएँ आगे दी गयी है। उनसे मालूम हो जाता है कि रवीन्द्रनाथके हृदयमें किस तरहकी उथल-पुथल मची हुई थी? ससारसे मिलनेके लिये वे किस तरह व्याकुल हो रहे थे। हृदयका बन्द द्वार कविताके आते ही खुल गया और प्रेमकी जो धारा बही, उन्हें उनकी कविताओंके साथ, ससार भरमें बहाती फिरी।

१८८३ ई० में, कुछ समय तक वे करवार—पश्चिमी उपकूलमें रहे। यहाँ वे प्रसन्न रहते थे। यहाँकी प्रकृति—उसकी विशालता—दूरतक फैली, आकाशसे मिलती हुई, उन्हें बहुत पसन्द आई। इसी साल, दिसम्बरमें २२ वर्षकी उम्रमें, उनका विवाह हो गया।

'प्रकृतिर परिशोध' लिखनेके बाद कलकत्ता लौटकर उन्होने 'छवि ओ गान' लिखा। कलकत्ता, जोडासाँको-भवनसे वे नजदीककी कुटियोंमें रहने-वाले निर्धन गृहस्थोंका जीवन, दैनिक स्थिति, एकान्तमें चुपचाप बैठे हुए देखा करते थे। सहानुभूतिशील कवि-हृदयमें उसका प्रभाव पडे बिना न रहता था। इसपर उन्होने दु खान्त एक नाटक लिखा—'नलिनी।' अब यह पुस्तक अप्राप्य है। इससे बढकर उनका दूसरा दु खान्त नाटक 'मायार खेला' निकला।

करवारसे लौटनेके पश्चात् रवीन्द्रनाथकी मानसिक स्थिति बदल गयी थी। अब पहलेकी तरह निराशा न थी। आदर्श विहीन जीवनको साहित्यका मजबूत आधार मिल गया था। प्रभात सगीतके निकलनेके बादसे जीवन पूर्ण और हृदय दृढ हो गया था। साहित्य-लक्ष्यपर स्थित हो जानेके कारण, इधर वे लगातार लेखनी-सचालन करते गये। 'आलोचना' में उनके कई प्रबन्ध निकले।

समालोचक, रवीन्द्रनाथ प्रथम श्रेणीके हैं। शब्दोको सजाने और सत्यको लापता करनेवाले समालोचकोकी तरह ये नही हैं। इनकी समालोचना चुभती हुई, यथार्थ ही सत्यको भाव और भाषाके भूषणोंके साथ रखनेवाली हुआ करती है। इसी समय, 'राजर्षि' नामक एक उपन्यास इनका लिखा हुआ निकला, पीछेसे यह नाटकमें 'विसर्जन' के नामसे वदल दिया गया। यह उच्च कोटिका नाटक माना जाता है। इसके वाद, 'समालोचना', उनके प्रवन्धोका दूसरा खण्ड प्रकाशित हुआ। इन दिनो वगालमें वकिमचन्द्रकी तूती वोलती थी। वड़े-वडे साहित्यिक उनकी धाक मानते थे। उनके उपन्यासोका खूब प्रचार वढ रहा था। वकिमचन्द्रकी प्रतिभाकी ओर रवीन्द्रनाथ भी आकृष्ट हुए। दोनोमें मित्रता हो गयी लेकिन कोई भी एक दूसरेके व्यक्तित्वको दवा नही सका। कुछ ही दिनो वाद मित्रताका परिणाम घोर प्रतिवाद हो गया। रवीन्द्रनाथकी 'हिन्दू-विवाह' पर दी गयी वक्तृताने दोनोमें विवाद ला खडा कर दिया। जिस-पर रवीन्द्रनाथके प्रयोग ज्यादा जोरदार जान पडते हैं, समयके खयालसे आदर्श अवश्य ही वकिमचन्द्रका वडा था। यह १८८७ ई० का विवाद वडे ऊँचे दर्जेका है। इसके अतिरिक्त १८८८ ई० में कई और कविताएँ लिखकर रवीन्द्रनाथने वालिका-विवाहकी खवर ली है।

यौवनकी पूरी हद तक पहुँचनेके पहले ही रवीन्द्रनाथका 'कड़ी ओ कोमल' पुस्तिकाकार निकला। उनके छन्द और सगीतके सम्वन्धपर विचार करने-वाले पश्चिमी समालोचकोकी समझ में नही आया कि रवीन्द्रनाथ पर वास्तवमें सगीतका प्रभाव अधिक है या छन्दोका। दोनो इस खूबीसे परिस्फुर कर दिये जाते हैं कि समालोचकोकी वुद्धि काम नही देती—वे जव जिसे देखते हैं तव उसे ही रवीन्द्रनाथकी श्रेष्ठ कारीगरी समझ लेते हैं। हमारे विचारसे रवीन्द्रनाथ दोनोंके सिद्ध कवि हैं। सगीतपर उनका जितना जवरदस्त अधिकार है उतना ही अधिकार छन्दोपर है।

१८८७ ई० से १८९५ ई० तक रवीन्द्रनाथका साहित्यिक कार्य यौवनकी विक-सित अवस्थाका कार्य है। इस समय उन्हें कोई अशांति नही, घात-प्रतिघातोंसे चित्तको क्षोभ नही होता, सहनशीलता काफी आ गई है और सौन्दर्यको परा-

वे विचार किया करते थे। परन्तु यहाँ उन्हें व्यक्तिगत रूपसे गरीव किसानोंके साथ व्यवहार करना पडा। इससे जीवनकी भीतरी अवस्था, उसके सुख और दुःखके चित्र वे अच्छी तरह देख सके। साहित्यका एक अग और जोरदार हो गया।

जमींदारीके कार्यमें रवीन्द्रनाथने अच्छी योग्यता दिखायी। कार्यमें चारुता आ गयी और जमींदारी पहलेसे सुधर गयी। रवीन्द्रनाथने सिद्ध कर दिया कि प्रबन्ध कार्योंमें भी वे दक्ष हैं। उन्होने कृषिकी उन्नति की। कितने ही उपाय पैदावार वढानेके निकाले। लोगोको उनसे सन्तोष हुआ।

इस समय रवीन्द्रनाथ सुखी थे। उनकी दिन-चर्या भी अच्छी थी। उनके लेखोंमें सूचित है, पद्माकी गोद उन्हें बहुत पसन्द आयी। छिन्न-पत्रके नामसे उनकी कुछ गद्य-पक्तियाँ और 'चित्रा' इसी समय लिखी गयी थी। चित्राका स्थान रवीन्द्रनाथकी कविताओंमें बहुत ऊचा है। लेकिन क्रमश उनकी कविता उन्नति करती गयी। इसलिये कहना पडता है कि वादकी कविताएं और अच्छी हैं। वैसे तो जीवनके अन्तिम दिनोंमें रवीन्द्रनाथने जो कविताएँ लिखी हैं, हमारी समझमें उनका स्थान और ऊँचा है। सौन्दर्यकी इतनी मनोहर सृष्टि बहुत कम मिला करती है।

इन्हीं दिनो चित्रागदा नाटक निकला। रवीन्द्रनाथके नाटकोमें चित्रागदाकी जोडका दूसरा नाटक नही। यह सौन्दर्यके विचारसे कहा जा रहा है। चित्रागदापर प्रतिकूल समालोचना वहुत हो चुकी है। वगालके प्रसिद्ध नाटककार डी० एल० राय महाशयकी एक तीव्र आलोचना निकल चुकी है। उन्होने आदर्शका पक्ष लिया था। चित्रागदाके सौन्दर्यको आदर्श भ्रष्ट करनेवाला करार देते हुए उन्होने समालोचना समाप्त की है। परन्तु रवीन्द्रनाथकी कवित्व-शक्तिकी उन्होने मुक्तहस्त होकर प्रशसा की है। यह सच है कि चित्रागदा पौराणिक आख्यानके आधारपर लिखी गयी है, इसलिये पौराणिक भावोकी रक्षा होनी चाहिये थी, अर्जुन और चित्रागदाके विषय-वासनाकी ओर जितना ध्यान रवीन्द्रनाथने दिया है, उतना उनकी शुद्धि और सन्तोषपर नही दिया।

डी० एल० रायका यह विवाद आदर्शकी दृष्टिसे बुरा न था। परन्तु कुछ भी हो, कवि स्वतन्त्र है। उसपर ये दोष नहीं मढे जा सकते। दमयन्ती जैसी सतीके सम्बन्धपर लिखते हुए जैसा नग्न चित्र श्रीहर्षने खीचा है, वह उनके नैषधमें प्रत्यक्ष कीजिये।

कुछ लोग चित्रागदाको नाटक न कहकर उत्कृष्ट कविता कहते हैं। रवीन्द्रनाथके अगरेज समालोचक तो चित्रागदाके अगरेजी अनुवाद चित्रापर मुग्ध है। वे नाटकोमें 'विसर्जन' को रवीन्द्रनाथका श्रेष्ठ नाटक मानते है। साथ ही उनका कहना है कि विसर्जन वगला-साहित्यका सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसी समय 'सोनार तरी' निकली। इसकी अधिकाश कविताएँ छायावादपर ह। परन्तु है वड़ी सुन्दर। यह रवीन्द्रनाथकी नवीनता लेकर आयी। दूसरी कविताओंसे इसकी प्रकाशन-धारा विल्कुल नये ढगकी है। कुछ दिनो वाद 'चिना' निकली। जीवनके प्रथमार्द्ध कालमें इससे अधिक मोहिनी सृष्टि रवीन्द्र-नाथकी दूसरी नही। सौन्दर्य इसमें हद तक पहुँच गया है। कहते है इनकी 'उर्वशी' कविता ससार भरकी एक श्रेष्ठ कविता है। उर्वशी आगे, उद्धरणमें, दी गयी है।

१८९५ ई० में 'साधना' समाप्त हो गई। इसी साल 'चैताली' के अधिकाश पद्य निकले और १८९६ ई०में कविताओका पहला सग्रह प्रकाशित हुआ। साधनाके निकल जानेके कुछ ही समय वाद 'चैताली' छप कर तैयार हुई। 'चैताली' के नामकरणमें भी कविता है। एक तरहके धान चैतमें होते है। उसीके नामपर चैताली नाम रक्खा गया। चैताली यानी रवीन्द्रनाथ चैतके अन्तिम दाने चुन रहे है। १८८७ ई० से १९०० ई० के अन्दर रवीन्द्रनाथकी चार और प्रसिद्ध पुस्तकें निकली—कल्पना, कथा, कहानी और क्षणिका।

१९०१ ई० में मृत 'वगदर्शन' में फिरसे जान आई—रवीन्द्रनाथ उसके सम्पादक हुए।

इसी साल वोलपुरके पासवाले इनके आश्रमकी नीव पड़ी। रवीन्द्रनाथके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथके यहाँ, ऊँची और खुली भूमिपर, वडे-वड़े पेड देख

कर साधना करनेकी इच्छा हुई थी। अब शातिनिकेतनके नामसे यह ससारमें प्रसिद्ध है। इस समयसे ज्यादातर रवीन्द्रनाथ यही रहा करते थे। शाति-निकेतन भारतीय ढगका विश्व-विद्यालय हो, यह रवीन्द्रनाथकी आन्तरिक इच्छा थी। भविष्यके विश्वविद्यालयको वे बतौर एक छोटेसे स्कूलके चलाने लगे। कलकत्ता विश्वविद्यालयकी शिक्षासे उन्हें बडी घृणा थी। वे इसकी बुनियाद तक खोद कर हटा देनेके लिये तैयार थे। भारतीय ढगसे बालकोंको शातिनिकेतनमें आदर्श शिक्षा मिलती है।

१९०१ ई० से १९०७ ई० तक रवीन्द्रनाथने उपन्यासलिखने में बडा परिश्रम किया। उनका 'गोरा' उपन्यास इसी समय निकला था। हृदयमें उत्साह भी उमड रहा था और वे सदा कर्म-तत्पर भी रहा करते थे। परन्तु एकाएक उनका सारा हौसला पस्त हो गया। जीवनकी धारा ही बदल गई। १९०२ ई० में उनकी स्त्रीका देहान्त हो गया। इस समय रवीन्द्रनाथका धैर्य देखने लायक था। हृदय दो टूक हो गया था, परन्तु शान्त गभीरताके सिवा, प्रसन्न मुखपर दुखकी छाया भी नही पडी। गभीरताकी स्थितिमें एकान्तप्रियता स्वभावत बढ जाती है। अत रवीन्द्रनाथ कुछ दिनोंके लिये सासारिक कुल सम्बन्ध तोडकर अलमोडा चले गये। उनका छोटा लडका माताके बिना एक क्षण भी न रहता था। रवीन्द्रनाथ बच्चेके लिये पिता व माता दोनो ही थे। 'कथा' की कुल कहानियाँ इस बच्चेके दिल-बहलावके लिये ही लिखी गयी थी। इसी साल उन्होने 'स्मरण' लिखा—'स्मरण' उनकी पत्नीकी स्मृतिपर लिखा गया था। इसके कुल पद्य मर्मस्पर्शी हैं। सौन्दर्यको हद तक पहुँचाना तो रवीन्द्रनाथके लिये बहुत आसान बात है। १९०३ ई० में उन्होने एक दूसरा उपन्यास 'दी रेक' लिखा। इसमें हिन्दू परिवारका आदर्श दिखलाया गया है कि परिवारमें एक दूसरेके प्रति हिन्दुओकी भाव-भक्ति, प्रेम और सेवा किस तरहकी होती है। १९०४ ई० में देश-भक्ति सम्बन्धी पद्योका सग्रह, 'स्वदेश-सकल्प' के नामसे निकला। इसने बहुत जल्द लोक-प्रियता प्राप्त कर ली। १९०५ में 'खेया' निकली। इसी समय उनके छोटे लडकेकी मृत्यु हो गई।

१९०५ ई० में वग-भग आन्दोलन आरम्भ हुआ। बगालके कोने-कोनेसे एक

ही आवाज उठने लगी। देश भक्ति दिखलानेका यह समय भी था। उस समय दलके दल बगाली युवक स्वदेशी सगीत गाते हुए देशकी जनतामें नई आग फूंक रहे थे। परन्तु इस समय जितनी जोरदार आवाज रवीन्द्रनाथकी थी उतनी किसी दूसरेकी नही सुन पडी। कहते है कि राजनीति सम्बन्धी रवीन्द्रनाथके जैसे जोरदार और तर्क-सम्बद्ध प्रबन्ध अङ्गरेजी साहित्यमें भी बहुत कम निकलेंगे। विजय-मिलन, नामक वक्तृता रवीन्द्रनाथके जोशीले गद्यका उदाहरण है।

× × × ×

कवीन्द्र रवीन्द्र एकाधारमें दार्शनिक, वक्ता, लेखक, उपन्यासकार, नाट्यकार, सुकवि और अच्छे अध्यापक हुए। आप अपनी नव नवोत्मेषशालिनी प्रतिभाको जब जिस ओर लगाते, वही वह अपना कमाल दिखा देती थी। आपने अपने सुशिक्षित कुटुम्बके लोके सहारे 'भारती' नामकी एक उच्च कोटिकी साहित्यिक पत्रिका निकाली। आपही उसके सम्पादक थे। यह पत्रिका बादको आपहीकी कुटुम्बभुक्ता श्री सरलादेवी चौधुरानीके सम्पादकत्वमें और इसके बाद अन्य कई प्रवीण साहित्यिकोंके सम्पादकत्वमें निकलती रही और आज भी निकल रही है। वङ्ग भाषाके सामायिक साहित्यमें इस पत्रका बहुत ऊँचा स्थान सदासे रहा है। इन दिनो आप वङ्गदर्शन, प्रवासी, मावच तथा विभिन्न पत्रोंमें अपनी उत्कृष्ट कहानियाँ, लेख और कविताएँ प्रकाशित कराया करते थे। आपकी इन कृतियोसे समस्त बगालमें स्फूर्ति होती थी। लेखोंमें आपके विचार सर्वथा नये होते थे, अतएव कभी-कभी प्रवीण साहित्यिक, साहित्यिक रवीन्द्रकी प्रतिभाकी उपेक्षा करना चाहते थे और उसका विरोध भी कर बैठते थे। पर आपका तो उस समय साहित्यपर सिक्का जम रहा था। इसलिये उन विरोधोकी किसीने परवाह न की। रवीन्द्र द्वारा लिखित साहित्य दिन-दिन जनताका आदर प्राप्त करने लगा। रवीन्द्र वङ्ग-भाषा साहित्यके बहुत ऊँचे सिंहासनपर अधिष्ठित हो गये।

अपनी मातृभाषाकी सेवा करते-करते ही रवीन्द्रकी प्रतिभाने और भी चमत्कार दिखाना चाहा। अङ्गरेजी भाषापर आपका यथेष्ट आधिपत्य था।

अतएव अब आपने अङ्गरेजीमें भी अपनी कहानियाँ, लेख तथा कविताएँ लिखनी शुरू की। उनका प्रकाशन होते ही अङ्गरेजी पठित जनतामें आपके अङ्गरेजी साहित्यमें अवतरण करनेका खूब स्वागत हुआ। फिर तो आप धारावाहिक रूपसे बंगला और अंगरेजी दोनो भाषाओंके पत्रोमें अपने पुख्ता विचार भरे लेख प्रकाशित कराने लगे। इन लेखोने अंगरेजी साहित्यपर अपनी धाक जमा दी। उससे कितने ही अंगरेज आपकी प्रतिभा और पाण्डित्यके कायल हो गये। अब रवीन्द्रको भला फुर्सत कहाँ ? इंगलैण्ड और अमेरिकाके पत्रोने रवीन्द्रके लेखोको 'माडर्न रीव्यु' आदि पत्रोंसे उद्धृत कर अपने पत्रोकी लोकप्रियता बढ़ायी। इसके बाद ही आपने अंगरेजीमें अपनी चुनी हुई कहानियोका एक संग्रह किया, जो कि लण्डनके एक प्रसिद्ध पुस्तक-विक्रेताने प्रकाशित कराया। उसके प्रकाशित होनेके साथ ही लाखो प्रतियाँ खप गयी। संस्करण-पर संस्करण हुए उसके। फिर तो आपने अपने कई उपन्यास भी अंगरेजीमें अनुवाद कर प्रकाशित कराये और उनका अच्छा आदर हुआ।

रवीन्द्र बाबू लार्ड मेकालेकी शिक्षण-पद्धतिके चिर-कालसे विरोधी थे। उसकी व्यर्थताका अनुभव आपको बहुत दिनो पूर्व हो चुका था। एम० ए० और बी० ए० डिगरीधारी अंगरेजी शिक्षण-पद्धतिके चरम स्वर तक पहुँचे हुए विद्यार्थियोका उद्देश्य-हीन, स्वदेशीय भावहीन जीवन आपकी निगाहोमें बहुत दिनोंसे खटकता था। अतएव अपने देशके बालक और बालिकाओको वास्तविक शिक्षासे शिक्षित करानेवाले एक आदर्श शिक्षालय स्थापनकी कल्पना आपके मस्तिष्कमें बहुत दिनोंसे उठ रही थी। उसकी सिद्धिके लिए विलक्षण कार्य-क्रमपूर्ण योजनाका निर्माणकर आपने पहले उसे मित्रो, फिर सर्वसाधारणमें उपस्थित किया। सभीने उस योजनाका हृदयसे अनुमोदन किया और हर सम्भव प्रकारसे सहायता भी प्रदान की। परिणाम यह हुआ कि रवीन्द्रनाथकी लगन, कल्पना और कार्य-तत्परताने अत्यन्त शीघ्र, प्राचीन विद्यापीठोंके आदर्श-पर शिक्षाके सर्वाङ्गोसे पूर्ण एक शान्तिनिकेतन नामका आश्रम 'बोलपुर' की पवित्र हरिद्भूमिमें स्थापित कर दिया। स्वयं रवीन्द्र ही हुए उसके आचार्य बंगालके, नही भारतके—नही नही विश्वके विज्ञानसे विचक्षणी भूत विद्वान

हुए इसके अध्यापक और हुआ इसमें आदर्श शिक्षा आरम्भ। देवर्षि तुल्य ठाकुर द्विजेन्द्रनाथ इसके तत्वाध्यापक वनकर वही जीवन व्यतीत करने लगे। वे रवीन्द्रवाबूके वडे भ्राता थे। इस युगके आदर्श तपस्वी थे। ज्ञानकी अत्यन्त उच्च सीमा प्राप्त कर ली थी उन्होने। इसका पाठ्यक्रम भी सर्वाङ्गपूर्ण रखा गया। जिन्होने इस संस्थाको देखा है, उनका स्पष्ट मत है, भारतमें इस जोडकी दूसरी शिक्षण-सस्था नही है। इसमें शिक्षा पाया हुआ विद्यार्थी सच्चा विद्वान् हो जाता है। रवीन्द्रने इसकी अभिवृद्धिमें गजवका परिश्रम किया है।

शान्तिनिकेतनकी सुव्यवस्था कर साहित्यव्रती रवीन्द्र फिर अपने व्रतमें लग गये। आपने इस वार कुछ अद्‌भुत भावपूर्ण क्षुद्र कविताएँ लिखनी आरम्भ की। और इसी तमय हुआ उनका विदेश-भ्रमण। इस भ्रमणमें प्रकृति देवीका आपने अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण किया। स्वभावके कितने ही नूतन भाव मालूम हुए उन्हें। आध्यात्मिक भावोंके तो आप पहुँचे हुए प्रेमी ठहरे। इन सभी भावो और देश-विदेशके साहित्य अध्ययन तथा अनुभवने आपकी प्रतिभाका और भी विकास किया और इसके वाद जो लेखनी उठी, उसने तो कमाल हो कर दिया।

यह कमाल गीतांजलि हुई। गीताजलि वङ्गालकी गीता वन गयी। घर-घर, कण्ठ-कण्ठपर नृत्य करना शुरू किया उसने। रवीन्द्रके परम मित्र मिस्टर एण्ड्रूजने भी सुना उसे। वह लोट पोट हो गया उसके भावोपर और उसने छाती ठोक कर कहा ससारके सम्मुख कि विश्व-साहित्य भरमें इस जोडका ग्रन्थ नही निकलेगा। रविवावूको उसने गीताजलिको अगरेजीमें लिखनेके लिये प्रेरित किया। कविकी समझमें यह वात आ गई और जुट गये वे अंगरेजी गीताजलिको लिखनेमें। पुस्तक पूरी हुई और सुन्दर प्रकाशन हुआ उसका अंगरेजी साहित्यमे। निकलते ही तो एण्ड्रूजकी वाणी सत्य हुई। तहलका मचा दिया अंगरेजी साहित्यमें उस ग्रन्थ रत्नने। विश्वद्रष्टाकी उसपर नजर गयी। उन्होंने उसे पढा, अपनी कसौटीपर कसा और विशेष लक्षण युक्त पाया। पत्रोमें उसकी चर्चा हुई। काव्यके मर्मज्ञोंने उसे विश्वसाहित्यका एक आभापूर्ण रत्न वताया और यूरोपकी सवसे वडी साहित्यिक सस्था 'विज्ञान-कला-

रवि बाबूका जीवन-पथ बहुत विस्तृत है। उन्होंने अपने लोकोत्तर कार्योंसे भारतका मुखोज्वल किया है। आज विश्वसभामें भारतको एक आदरपूर्ण स्थान रवीन्द्रनाथने ही दिलाया है।[१]

१. रविबाबू के सम्पूर्ण जीवन और साहित्यिक कृतित्व के लिये परिशिष्ट देखिये।

प्रतिभाका विकास

यो तो आत्म-विश्वास सभी मनुष्योको होता है—सभीलोग अपनी शक्तिका अन्दाजा लगा लेते है, फिर कवियो और महाकवियोके लिये यह कौन बहुत बडी बात है। दूसरे लोगोको तो अनुमान मात्र होता है कि उनमें शक्तिकी मात्रा इतनी है, परन्तु वे उस अनुमानको विषद रूपसे जन-समाजके सामने रख नही सकते; कारण, उनपर वागदेवीकी वैसी कृपा-दृष्टि नही होती; परन्तु जो कवि है, उन्हें जब अपनी प्रतिभाका ज्ञान हो जाता है तब वे, दूसरोकी तरह निर्वाक रहकर अथवा थोडे ही शब्दोमें, अपनी प्रतिभाका परिचय नही देते। वे तो अपने लच्छेदार शब्दोमें पूर्ण रूपसे उसे विकसित कर दिखानेकी चेष्टा करते है। नही तो फिर सरस्वतीके वरपुत्र कैसे? महाकवि श्रीहर्षने अपने नैषध-काव्यकी अध्याय-समाप्तिमें और कही महाकवि भवभूतिने भी, कैसे पुरजोर शब्दोमें अपने महत्वकी याद की है, यह संस्कृतके पण्डितोको अच्छी तरह मालूम है। परन्तु कवियो और महाकवियोके लिये इस तरहका वर्णन न तो अतिशय-कथन कहा जा सकता है और न प्रलाप ही। यह तो उनके आत्म-परिचयके रूपमें किया गया उनका उतना ही स्वाभाविक उद्गार है जितना प्रकृतिका वसन्त। अस्तु, प्रतिभाके विकास-कालमें महाकवि रवीन्द्रनाथ किस तरहसे हृदयकी बातें खोल रहे है, सुनिये —

"आजि ए प्रभाते सहसा केरने
पथहारा रवि-कर
आलय न पेय पड़ेछे आसिये
आमार प्राणेर पर
बहु दिन परे एकटी किरण
गुहाय दियेछे देखा
पड़ेछे आमार आंधार सलिले
एकटी कनक-रेखा।"

गार है। भला यह पत्थरोका कारागार है क्या चीज ? इसके यहाँ कई अर्थ हो सकते हैं और सभी सार्थक। पहले तो यह कहना चाहिये कि यह अज्ञान है क्योकि जगकर कविने पहले अपनी पूर्व-परिस्थिति यानी अज्ञानको ही देखा होगा। भयानक अवस्थामें पडे हुए भी जिसका ज्ञान कविको नही हो रहा था, पहले उसीकी मूर्ति देखी होगी। अर्थात् ज्ञान होनेपर पहले कविने अपने अज्ञानका अनुभव किया होगा। परन्तु कवि कहता है, मेरे चारो ओर पत्थरोंका घोर कारागार है। इस 'चारो ओर' शब्दसे सूचित होता है कि कविको वाहर भी घोर अज्ञान देख पडा होगा—उसे वाहरके मनुष्य—उसके पास-पडोस वाले भी अज्ञान-दशामें दीख पडे होगे। कविका यह दर्शन निरर्थक नही। उसके चारो ओर जो प्रकृति नजर आई, वह भारत है। यहाँ पत्थरके कारागृहमें कविके साथ भारत भी है। आगेकी पक्तिमें यह अर्थ और समक्षमें आ जाता है। जहाँ कवि कहता है,—हृदयपर अधकार वैठा हुआ अपना ध्यान कर रहा है, वहाँ अध-कारके साथ कवि अपने मोहका भी उल्लेख करता है और देशको दुर्दशाग्रस्त करने वाले विदेशियोका भी। यहाँ विदेशियोकी तुलना अन्वकारके साथ करके, उसे अपने और साथ ही देशके हृदयपर वैठकर अपना ध्यान करता हुआ यानी अपना स्वार्थ निकालता हुआ वतलाकर कवि देशकी दुर्गतिका चित्र ही आँखोंके सामने रख देता है। यह अकन इतनी सफलतापूर्वक किया गया है कि इसकी प्रशसाके लिये कोई योग्य शब्द ही नही मिलता। यह पद्य एक ही अर्थकी सूचना नही देता, उसका पहला अर्थ खुला है, और वह पढनेके साथ पहले आध्यात्मिक भावकी ओर इगित करता है। हृदय ज्ञान होनेसे पहले अन्धकाराच्छन्न हो रहा है। वहाँ किसी प्रकारका प्रकाश प्रवेश नही कर पाता। अन्वकार वहाँ वैठा हुआ अपने ध्यानमें मग्न है। हृदयमे अनेक प्रकारकी अविद्याओका राज्य हो रहा है। अविद्याके प्रभावसे वहाँ जितने प्रकरके अनर्थ हो सकते हैं, हो रहे हैं। ऐसे समय एकाएक हृदयपरकी वह काली यवनिका उठ जाती है, वहाँ विद्याका प्रकाश फैल जाता है। अचानक यह परिवर्तन देखकर कवि अपने प्रकाश पुलकित दृश्यसे कह उठता है—आज इतने दिनो वाद मेरे प्राणोमें यह कैसा जागरण हो गया ?

अपने प्रेम और आनन्दके अनादि प्रवाहमे वहता हुआ कवि कहता है—

"घुमाये देखिरे जेन स्वपनेर मोह माया,
पडेछे प्राणेर माझे एकटी हासिर छाया।
तारि मुख देखे देखे, आधार हासिते सेखे,
तारि मुख चेये चेये करे निशि-अवसान,
सिहरि उठेरे वारि दोलेरे दोलेरे प्राण,
प्राणेर माझारे भासि, दोलेरे दोलेरे हासि,
दोलेरे प्राणेर परे आशार स्वपन मम
दोलेरे तारार छाया सुखेर आभास सम।
प्रणय प्रतिमा जवे स्वपने देखेरे कवि,
अधीर सुखेर भरे कापे वुक थरे थरे,
कम्पमान वक्ष परे दोले से मोहिनी छवि,
दुखीर आधार प्राणे सुखेर सशय यथा,
दुलिया दुलिया सदा मृदु मृदु कहे कथा;
मृदु भय, कभु मृदु आश
मृदु हासी, कभु मृदु श्वास।
वहु दिन परे सोन विस्मृत गानेर तान,
दोलेरे प्राणेर माझे दोलेरे आकुल प्राण;
आध, आध, जागिछे स्मरणे,
पड़े पड़ नाहीं पड़े मने।
तेमनी तेमनी दोले, ताराटी आमार कोले,
कर ताली दिये वारि कल कल गान गाय
दोलाये दोलाये जेनो घूम पडाइते चाय।"

(सोते हुए मैंने देखा, स्वप्नकी मोह-मायाकी तरह मेरे प्राणो में हँसीकी एक छाया पडी हुई है। उसीका मुँह देख देखकर अन्धकार भी हँसना सीखता है और उसीका मुंह जोहता हुआ वह रात्रिका अवसान कर देता है; (यह देख) पानी भी सिहर उठता है और मेरे प्राण भी झूमते रहते हैं। प्राणोंके

विक प्रसन्नताके द्वारा क्रूरोंके मनपर भी विजय प्राप्त की जा सकती है। देशके ओर रवीन्द्रनाथका यह भी एक बहुत बडा इशारा है और यौक्तिक तथा दार्शनिक। तत्वकी एक बात और कविने इन पक्तियोमें कह डाली है, पहले जीवनमें अन्धकार था। जीवनका अन्धकार मोह-मय था अतएव निश्चेष्ट था, उसमें कोई भी क्रियाशीलता न थी, वह जड था। जब विद्याकी ज्योति हृदयमें पहुँची, जागृतिका युग आया, तब हृदयके मधुर स्पन्दनके साथ विश्व-ससारमें कम्पन भर गया,—तब हृदयके साथ सारी प्रकृति नृत्यमयी हो गई—स्वप्नमें नर्तन, हृदयमें नर्तन, प्रणयकी प्रतिमामें नर्तन, सुखकी निर्भरतामें नर्तन, मोहिनी प्रतिमामें नर्तन, स्मृति और अधमुदी विस्मृतिमें नर्तन, तारोमें नर्तन, जलकी लहरियोमें नर्तन और सोते समयके झूलेमें नर्तन होने लगा—सबमें जीवनकी स्फूर्ति आ गयी—पहलेकी—वह जडता दूर हो गयी।

अभी यह नर्तन बहुत ही मृदुल है, अभी यह कोमल कुमारका नर्तन है, अभी इसमें यौवनका उद्दाम ताण्डव नही आया? अभी इस प्रथम जागरणके नर्तनमें केवल सौन्दर्य है, कर्म नही, सुख है किन्तु तृष्णा नही, प्रेम है किन्तु लालसा नही, कल्पना है किन्तु कला नही, जीवन है किन्तु सगठन नही। जब वह समय आता है, तब कविकी लालसा ससारके एक छोरसे लेकर दूसरे छोर तक फैल जाती है, जब हृदय अपने ही आधारमें रहकर सन्तुष्ट नही रहता—वह न जाने कहाँ,—उस किस विशालताको समेट लेना चाहता है, जब प्रतिभा सुन्दरी यौवनके सुचारु दर्पणमें अपना प्रतिविम्ब देखकर कुछ गर्व करना, कुछ मान करना, कुछ अधिक प्रेम करना, कुछ वियोग करना, कुछ रूपका अभिमान करना सीखनेके लिये लालायित होती है, तब महाकविके हृदयोद्गार इन स्वरूपोमें बदल जाते है —

"जागिया उठेछे प्राण,
(ओरे) उथली उठेछे वारी,
ओरे प्राणेर वासना प्राणेर आवेग
रुधिया राखिते नारी।

थर थर करि काँपिछे भूधर
शिला राशि राशि पड़िछे खसे,
फुलिया फुलिया फेनिल सलिल
गरजि उठिछे दारुण रोषे
हेथाय होथाय पागलेर प्राय
घुरिया घुरिया मातिया वेड़ाय,
वाहिरिते चाय, देखिते ना पाय
कोथाय कारार द्वार।
प्रभाते रे जेनो लइते काड़िया,
श्राकाशेरे जेनो फेलिते छिड़िया
उठे शून्य पाने पड़े श्राछाड़िया
करे शेषे हाहाकार।
प्राणेर उल्लासे छुटिते चाय,
भूधरेर हिया टुटिते चाय,
श्रालिंगन तरे ऊर्द्ध्वे बाहु तुलि
श्राकाशेर पाने उठिते चाय।
प्रभात किरणे पागल होइया
जगत माझारे लुटिते चाय।
केन रे विधाता पाषाण हेनो,
चारिदिके तार बांधन केनो ?
भांगरे हृदय भांगरे बाधन,
साधरे श्राजिके प्राणेर साधन,
लहरीर परे लहरी तुलिया
श्राघातेर परे श्राघात कर;
मातिया जखन उठेछे पराण,
किसेर श्रांधार किसेर पाषाण,
उथलि जखन उठेछे वासना
जगते तखन किसेर डर।"

वना रही थी—जिस समय कलीके भीतरकी अवरुद्ध गन्ध अपने विकासके लिये—प्रकृतिके सौन्दर्यके साथ अपना सौन्दर्य मिलानेके लिये—अपनी सुन्दरता-का बिम्ब दूसरोकी प्रसन्नतामें देखनेके लिये, मचल-मचलकर कलीके कोमल दलोमें धक्का मार रही थी, महाकवि रवीन्द्रनाथकी ये उसी समयकी युक्तियाँ हैं। कलीकी सुगन्धकी तरह महाकविकी प्रतिभा भी अपनी छोटी-सी सीमाके भीतर सन्तुष्ट नही रहना चाहती। वह हर एक मानवीय दुर्वलताको परास्त करना चाहती है। यह उसका स्वाभाविक धर्म भी है। क्योकि देवी-शक्ति वही है जो मानवीय वन्धनो का उच्छेद कर देती है। जो वन्धन मनुष्यको कर्मश दुर्वल करते जाते हैं, उन्हें खोलकर मनुष्यको मुक्त कर देनेकी शक्ति दैवी-शक्तिमें ही है। कभी-कभी आसुरी उच्छृङ्खलता भी मानवीय पाशोका कृतान करती है, और अधिकांश समयमें, दैवी-शक्तिके वदल आसुरी-शक्तिको ही मानवीय शृङ्खलाओंके नाशके लिये जन-समाजमें उच्छृङ्खलताका बीजारोपण करते हुए हमलोग देखते हैं। प्राय हमलोग उसकी क्षणिक उत्तेजनाके वशमें आकर उसके विषमय भविष्य-थलकी ओर ध्यान देना उस समय भूल जाते हैं। इससे जन-समुदाय एक कदम पीछे ही हट जाता है, यद्यपि पहले उसे आसुरी उत्तेजना के द्वारा बढ़नेका एक लालच-ऐसा होता है। परन्तु रवीन्द्रनाथकी यह उत्तेजना आसुरी उत्तेजना नही, उनकी यह ललकार जन-समुदायमें किसी प्रकारकी आसुरी भावना नही लाती। उनके शब्द सोते हुओको जगाते हैं, उन्हें अपनाकर—अपने स्वरूपमें उन्हें भी मिलाकर—अपने भाव उनमें भी भरकर, अपनी ही तरह उन्हें भी उठाकर खडा कर देता है और उन्हें सुनाता है एक वह मत्र जो जागरणके प्रथम प्रभातमें हर एक पक्षी ससारको सुनाया करता है, जिसमें उसका अपना स्वार्थ कुछ भी नही है—है केवल अपने आनन्दके स्वरसे दूसरोको सुख देनेकी एक लालसा—स्वार्थपर होनेपर भी, नि स्वार्थ। रवीन्द्रनाथ अपने भावकी नि स्वार्थ प्रेरणासे ससारको पुकार कर जागरणका सगीत सुन रहे है। यदि कुछ और तह तक पहुँचकर कविकी इस पुकारकी छान-वीन की जाय तो हम देखेंगे, यह कविकी नही, किन्तु उसी प्रतिभाकी पुकार है, उसी दैवी-शक्तिकी अभ्युत्थान-ध्वनि है, जिसके आविर्भावसे

कविका हृदय उद्भासित हो उठा था। इस ध्वनिसे जन-समुदायका कोई अनर्थ नही हो सकता। इसमें भी उत्तेजना है, किन्तु क्षणिक नही। यह निर्जीवोको जिला देनेके लिये, पद-दलितोमें उत्साहकी आग भडकानेके लिये, नग्न हृदयोको आशाकी सुनहरी छटा दिखानेके लिये, सदा ही ज्योकी त्यो बनी रहेगी। यह अपने आनन्दकी ध्वनि है, किन्तु इसमें दूसरे भी अपना प्रतिविम्ब देख लेते है। यह व्यक्ति और देशके लिये तो ससीम है किन्तु विश्वके लिये निस्सीम। एकदेशिक भावोंका मनुष्य इसमें एकदेशिक भावकी सुरीली किन्तु ओजस्विनी रागिनी पाता है और वह उसीके भावोमें मस्त हो जाता है, और व्यापक विश्व-भावोका मनुष्य इसमें व्यक्तिकी वह असीमता देखता है जिसकी समाप्ति, जीवनकी तो बात ही क्या, युग और युगान्तर भी नही कर सकते। ससीम और असीम, एकदेशिक और व्यापक, ये दोनो ही भाव महाकविकी इस उक्तिमें पाये जाते है। इससे देशका भी कल्याण होता है और विश्वका भी। यही इसकी विचित्रता है और यही इसका सौन्दर्य—अनूठापन। इन पक्तियोंके पाठसे पहले इसके क्रान्तिमूलक अतएव आसुरी होनेका भ्रम हो जाता है; क्योंकि, 'लहरीर पर लहरी तुलिया, आघातेर पर आघात कर' आदि पक्तियोमें शक्तिकी मात्रा इतनी है कि स्वभावत इनके क्रान्तिभावमयी होनेका विश्वास हो जाता है। परन्तु नही, कविताके पाठसे जिस स्नायविक उत्तेजनाके कारण ऐसा होता है, वह उत्तेजना पढनेवाले ही की दुर्वलता है, वह कविताका क्रातिकारी आसुरी भाव नही। हमारा मतलब क्रान्तिसे यहाँ आसुरी भावको लेकर है। यदि इस क्रान्तिको कोई दैवी-क्राति कहे और इसका उपयोग मानवीय दुर्वलताके विरोधमे करनेके लिये तैयार हो, तो हम इसके मान लेनेमें द्विसक्ति भी नही करेंगे। हम स्वयं यह मानते है कि किस कविताका प्रणयन दैवी-शक्तिके द्वारा हुआ है, उसका उपयोग मानवीय दुर्वलताओंके विरोधमें स्वच्छन्दतापूर्वक किया जा सकता है, और उससे दैवी भावनाओंको ही प्रोत्साहन मिलता है, न कि किसी आसुरी भावना को।

कविको जब अपनी महत्ताका अनुभव होता है तब वह इस प्रकार अपनी व्याप्तिका वर्णन करता है—

एक पूर्ण ज्योतिर्मये अनन्त भुवने !
घोषणा करिते हवे असेशय मने—
"ओगो दिव्यधामवासी देवगण जतो
मोरा अमृतेर पुत्र तोमादेर मतो ।"

(इस मृत्युका उच्छेद करना होगा—इस भयपाशका कृतान करना होगा—यह एकत्र हुई जडकी राशि—मृत निस्सार पदार्थ दूर करना होगा। अरे—इस उज्ज्वल प्रभातके समय, इस जाग्रत ससारमें, इस कर्मभूमिमें, तुझे जागना ही होगा। दोनो आँखोंके रहते भी वे फूटी है, यहाँ ज्ञानमें बाधा है, कर्मोंमें बाधा पड रही है, चलने फिरनेमें भी बाधा है और आचार-विचार ? वे भी बाधामें बँधे हुए है ! इन सब बाधाओंको पार करना होगा और आनन्दपूर्वक उदार उच्च कण्ठसे मुक्त विहङ्गोका स्वर अलापना होगा। सम्पूर्ण तिमिर-राशिका भेद करके अनन्त भुवनोमें एकमात्र ऊर्द्धव सिर उस पूर्ण ज्योतिर्मयीको देखना होगा। चित्तकी सारी शकाओको दूर करके घोषणा कर—"हे दिव्य-धामवासी देवताओ ! तुम्हारी तरह हम भी अमृतके पुत्र हैं।"

महाकवि वर्त्तमान पश्चिमी सभ्यतापर कटाक्ष कर रहे हैं—

"शताब्दीर सूर्य आजि रक्तमेघ माझे
अस्त गेलो,—हिंसार उत्सवे आजि वाजे
अस्त्रे अस्त्रे मरणेर उन्माद-रागिनी
भयकरी ! दयाहीन सभ्यता-नागिनी
तुलेछे कुटिल फण चक्षेर निमिषे !
गुप्त विष-दन्त तार भरी तीव्र विषे
स्वार्थे स्वार्थे बेधेछे सघात लोभे-लोभे
घ छे संग्राम,—प्रलय मथन-क्षोभे
भद्र वेशी बर्बरता उठियाछे जागी
पकशय्या होते ! लज्जा-शरम तेयागी

जाति-प्रेम नाम धरि प्रचण्ड अन्याय !
धर्मेरे भासाते चाहे वलेर वन्याय
कवि-दल चीत्कारिछे जागा या भीति
श्मशान-कुक्कुर देर काड़ा काड़ी-गीति !"

(रक्तवर्ण मेघोमें आज शताब्दियोंके सूर्य—अस्त हो गये। आज हिंसाके उत्सवमें, अस्त्रोकी झनकारके साथ ही साथ, मृत्युकी भयकर उन्माद-रागिणी वज रही है। निर्भय सभ्यता-नागिनी अपने विषवाले दाँतोमे तीखा जहर भरकर क्षण-क्षणमें अपनी कुटिल फन खोल रही है। स्वार्थके साथ अस्वार्थका सघात हो रहा है,—लोभके साथ लोभका सग्राम मचा हुआ है। भयकर प्रलयको ला खडा करनेके उद्दाम रोषसे, भद्रवेशिनी वर्वरता अपनी पक-शय्यासे जगकर उठी है, लाज-शर्मसे हाथ धो, जाति-प्रेमके नामसे प्रचड अन्याय धर्मको अपने वलकी वाढमे वहा देना चाहता है। कवियोका समूह पञ्चमस्वरमे श्मशान-श्वानोकी छीना-झपटीके गीत अलाप रहा है और लोगोमें भयका सचार कर रहा है।)

शताब्दियोंके सभ्यता सूर्यको पश्चिमी रक्तवर्ण मेघोमें अस्त करके, पश्चिमी सभ्यताका जो नग्न चित्र महाकविने इन पक्तियोमें दिखलाया है, वह तो पूरा उतरा ही है, इसके अलावा महाकवि की साहित्यिक वारीकियो पर भी यहाँ एकाएक ध्यान चला जाता है। उनकी इस उक्तिमे जितनी स्वाभाविकता आ गई है, उतनी ही उसमे कवित्व-कलाकी विभूति भी है। रक्तवर्ण मेघोमें सभ्यता-सूर्य अस्त होते हैं। एक तो स्वभावत सूर्यके अस्त होनेपर मेघ लाल-पीले देख पडते है, दूसरे मेघोकी रक्तिम आभा पश्चिमी सभ्यताके सग्राम-वर्णनकी साहित्यिक छटाको और वढा देती है, क्योकि सग्राम या रजोगुणका रंग भी लाल है—इसी सग्राम या रजोगुणमें शताब्दियोंके सभ्यता-सूर्य अस्त हो गये हैं—अव वह उज्ज्वल प्रकाश नही है। अव ललाई मात्र रह गई है। इसके वाद है रात्रिका अधकार—तमोगुण !

जातीय सगीतोंके गानेवाले कवियोकी उपमा रवीन्द्रनाथने मरघटके कुत्तोसे क्यो दी, इसका विस्तारपूर्वक वर्णन आगे चलकर इस तरह करते हैं—

अन्धकारमें बड़े धैर्यके साथ नम्र रहकर दीर्घकालसे दीनताकी दीक्षामें आँसू बहाता हुआ सर्वस्व गवाकर वह 'ब्राह्म मुहूर्त' की प्रतीक्षा करता होगा।)

यहाँ इन पक्तियोमें महाकविके निर्मल हृदय-पट पर स्वदेश-प्रेमका वही मनोहर चित्र खिचा हुआ देख पडता है, जिसके चारुता-सम्पादनमें पहलेके ऋषियो और महर्षियोने तपस्या करते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन पार कर दिया था। महाकविके हृदयमें ईर्ष्या और द्वेषकी एक कणिका भी नही देख पडती। ये अपनी हृदयहारिणी वर्णनामें किसी द्वेप-भाव-मूलक कविताकी सृष्टि नहीं करते। वे ससारको वही भाव देते है जो उन्हें अपने पूर्वजोसे उत्तराधिकारके रूपमें मिले हैं। जिस तरह वे दूसरी जातियोको जाति-प्रेमके नाम पर खूनकी नदियाँ वहाते हुए देखकर घृणापूर्ण शब्दोमें याद करते है, उसी तरह अपने देशके उद्धारके लिये भी, वे उसे क्रान्तिका पाठ नही पढाते। वे तो उसे, प्रतिभा और साहस, धर्म और विश्वास, दैव और पुरुषकारकी सहायतासे, निरस्त्र होकर भी संसारके समक्ष वीर्यका उदाहरण रखनेके लिये उपदेश देते हैं। यही भारतीयता है और यही उन्होने जीवन में परिणत कर दिखाया है। उन्होने अनुभव किया है, ससार के अन्त स्तल में सर्वव्यापी परमात्मा का ही स्थान है, अतएव वे विरोधीभावके द्वारा ससारमें अपनी युक्तिके वढानेका उपदेश कैसे दे सकते हैं? इस सम्बन्धमें वे स्वय कहते हैं—

तोमार निर्दीप्त काले
मुहूर्तेई असम्भव आसे कोथा होते
आपनारे व्यक्त करी आपन आलोते
चिर-प्रतिक्षित चिर-सम्भवेर वेशे!
आछो तुमि अन्तर्यामी ए लज्जित देशे,
सवार अज्ञात सारे हृदये हृदये
गृहे-गृहे रात्रि-दिन जागरुक होये
तोमार निगूढ़ शक्ति करितेछे काज
आमी छाडीनाई आशा ओगो महाराज!"

(जब तुम्हारा निर्दिष्ट समय आ जाता है तब असम्भव चिरकालके
काक्षितकी तरह चिर-सम्भवके रूपमें, मुहूर्तमें ही अपनेको व्यक्त करके
जाने कहांसे आ जाता है ! हे अन्तर्यामिन् ! इस लज्जित देशमें भी
हो। सबके अज्ञात भावसे हृदय-हृदयमें—गृह-गृहमें जाग्रत रहकर
हारी ही गूढ शक्ति अपना कार्य कर रही है। अतएव, हे महाराज !
आशा नही छोड़ी।)

देखिये आप महाकविके भावको, देखिये उनके हृदयके विश्वासको और
की भारतीयताको। यहाँ महाकवि साधारण तौर पर ईश्वरकी ही इच्छाको
छा और उन्हींके कर्मको कर्म मान रहे हैं। उनकी अलक्षित शक्तिके
रा ही, समयके आनेपर, असम्भव सम्भवके आकारमें बदल जाता है और
नकी इच्छाकी पूर्ति होती है, इससे बडी भारतीयता हमारी समझमें तो
र कुछ नही हो सकती। क्योंकि, अवतारवादकी जड एकमात्र यही भाव
। असम्भवको सम्भव कर दिखानेकी प्रचण्ड शक्तिको लेकर जो पैदा
ते हैं—जिनके आविर्भावसे ससारमें एक युग-परिवर्तनसा हो जाता है,
रतमें उन्हें ही अवतारकी आख्या दी जाती है। महाकवि भी इस आशय
पुष्टि करते हैं।

इस तरह, स्वदेशके सम्बन्धमें आपने और भी अनेक कविताओंकी रचना
है। वङ्गलक्ष्मी, मातार आह्वान्, हिमालय, शान्ति, यात्रा-सगीत, प्रार्थना,
ला-लिपि, भारत-लक्ष्मी, से आमार जननी रे, नववर्षेरगान, भिक्षाया नैव
व च—आदि कितनी ही कविताएँ महाकविने देशभक्तिके उच्छ्वासमें आकर
लखी हैं और इनमें सभी कविताएँ महाकविकी वर्णन-विशेषता प्रकट कर
ती हैं। आपके 'प्राचीन भारत' पद्यका कुछ अंश हम पाठकोंके मनोरंज-
ार्थ उद्धृत कर चुके हैं। लोकाचार या देशाचारको आप किन शब्दोंमें
ाद करते हैं, जरा यह भी सुन लीजिये,—बहुत छोटी कविता है, नाम है
दुइ उपमा'।

"जे नदी हाराये स्रोत चलिते ना पारे,
सहस्र शैवाल-दाम बाधे आसि तारे;

कुछ चाहता है, जिसे पसन्द करता है उसीके अनुकूल युक्तिया जोडता जाता है। बच्चा भी अपनी समालोचना में अपनेको अपने बावूजीसे कही अधिक बुद्धिमान समझता है, परन्तु उसकी बातोमें प्रवीण समालोचकोकी रूढता नही है, सरलतापूर्वक वह अपनी मासे अपने बावूजीकी मूर्खताकी जाँच कर रहा है। अपने बावूजीका लिखना वह खुद नही समझ सका, अतएव उसे विश्वास नही कि उस भाषाको उसकी मा समझती होगी। महाकविने बच्चेके स्वभावका बडा ही सुन्दर चित्राकण किया है। बच्चेकी दृष्टिमें ससार खिलवाड है, उसके बावूजी भी लिख-लिखकर खिलवाड किया किया करते हैं। उसे एक बातका बडा दुःख है। वह जब अपने बावजीकी दावात और कलम लेकर ककहरा गोदने लगता है, तब उसकी मा उसे तो डाटती है, पर उसके बावूजी से कुछ नही बोलती जो दिनभर बैठे-हुए खिलवाड किया करते हैं। ये कविताए निरी सीधी भाषामें लिखी हुई होने पर भी उच्च कोटिकी हैं। मनुष्यके मनमें पैठना जितना सरल है बालक की प्रकृतिको परखना उतना ही कठिन।

अब बच्चेका विज्ञान सुनिये। एक कविता 'वैज्ञानिक' नामकी है। बच्चा अपनी मा से कहता है—

जेमनी मागो गुरु गुरु
मेघेर पेले साडा,
अमनी एल आषाढ मासे
वृष्टि जलेर धारा।
पूवे हावा माठ पेरिये
जेमनी पडलो आसी
वास] बागाने सों-सों कोरे
बाजिये दिये बांसी—
अमनी देख मा चेये
सफल माटी छेये
कोथा थेके उठलो जे फूल

एतो राशी राशी !
तुइ जे भाविस ओरा केवल
अमनी जेनो फुल,
आमार मने हय मा तोदेर
सेटा भारी भूल !
ओरा सब इस्कूलेर छेले
पुंथी पत्र कांखे,
माटीर नीचे ओरा ओदेर
पाठशालाते थाके ।
ओरा पड़ा करे
दुआर-वन्द घरे,
खेलते चाइले गुरु मशाय
दांड़ करिये राखे ।
वोशेक-जैष्टि मासके ओरा
दुपुर वेला कय
आषाढ़ होले आंधार कोरे
विकेल ओदेर हय ।
डाल पालारा शब्द करे
घन वनेर माझे
मेघेर डाके तखन ओदेर
साढ़े चारटे वाजे ।
ओमनी छुटी पेये
आसे सवाइ धेये,
जानिस मागो ओदेर जेन
आकाशेतेइ वाड़ी
रात्रे जेथाय तारा गुली
दांड़ाय सारी सारी

साडीके अचल-भागको समाल कर निकलनेके लिये कहकर कवि नायिकाको प्रियतमसे मिला देनेकी आशा दिलाता है । वस्त्र सभालनेकी ओर इशारा करके महाकविने नायिका विरह-भावना की ओर भी इशारा किया हैं, इस चित्रमें वहुत मामूली बात भी कविके ध्यानसे नही हटने पाई । विरहकी अवस्थामें वस्त्रका खुल जाना वहुत ही स्वाभाविक है, और मिलनेके पूर्व उसके सभालनेकी ओर इगित करना उतना ही कवित्वपूर्ण । "चलो सखि चलो" इस वाक्यमें रवीन्द्रनाथ मानो नायिकाकी सखी वन जाते है, यहा जव एक ओर क्षोभ अभिमान, विरह और निराशा नजर आती है और दूसरी ओर—धैर्य, प्रेम, सहृदयता और आशाका आश्वासन मिलता है, तव हृदय में कविताकी कैसी दो दिव्य मूर्तिया एकाएक खडी हो जाती है । वर्णना-शक्तिकी सीमासे वाहर है । आगे चलकर महाकवि प्रकृतिमें स्वागतका चित्र दिखलाते हैं—"पुलकाकुल तरु वल्लरी" कहकर तरू और लताओंमें प्रभात समयका प्राकृतिक पुलक दिखलाते हुए, कल्पनाके द्वारा नायकके आ जानेका पुलक भी ,भर देते है । यहा प्रकृतिके सत्यसे कल्पनाके सत्यका मेल है, प्रकृतिके पुलकमें नायकके आगमनका पुलक है ।

"विरह-शयने फेलि मलिन मालिका,
एसो नव भूवने एसो गो वालिका ।"

यहा विरह शय्यापर कलकी गूथी हुई मालिन मालाको छोड कर वालिका (नवयौवना तरुणी) को नवीन ससारमें वुलानेका अर्थ यही है कि महाकवि उसके सयोगकी सूचना देते है । उनका यह भाव और साफ हो जाता है जव वे कहते हैं—

"गाथि लह अचले नव शेफालिका
अलके नवीन फूल मजरी ।"—

मलिन मालिकाको छोड, अचलमें नई शेफालिकाकी माला गूथ लेने और वालोमें पुष्प-मजरीके खोसनेका इशारा सूचित करता है सयोगक समय अव आ गया । अपनी दु खिनी सखीको उसके प्रियतमके पास महा कवि इस तरह कवित्व-पूर्ण ढगसे ले चलते है ।

(संगीत—२)

"वाजिलो काहार वीणा मधुर स्वरे
आमार निभृत नव जीवन परे ।। १ ।।
प्रभात-कमल-सम
फुटिलो हृदये मम
कार दुटि निरुपम चरण तरे ।।२।।
जेगे उठे सब शोभा सब माधुरि
पलके पलके हिया पुलके पुरी,
कोथा होते समीरण
आने नव जागरण,
पराणेर आवरण मोचन करे ।। ३ ।।
लागे वुके सुखे-दुखे कतो जे व्यथा,
केनने वुझाये कवो जानि ना कथा ।
आमार वासना आजि
त्रिभुवने उठे वाजि,
कांपे नदी वन-राजि वेदना-भरे ।। ४ ।।
वाजिलो काहार वीणा मधुर स्वरे ।"

अर्थ—"मेरे निभृत (निर्जन) और नवीन जीवन पर यह मधुर स्वरसे किसकी वीणा वजी ? ।।१।। प्रभात-कमलकी तरह मेरा हृदय किसके दो निरुपम चरणोके लिये विकसित हो गया ? ।।२।। पल-पलमे हृदयको पुलक-पूर्ण करके सम्पूर्ण शोभा—सम्पूर्ण माधुरी जग रही है । न जाने समीर कहाँसे नवीन जागरण ला रहा है (कि उसके स्पर्श मात्रसे शरीरमें सजीवता आ रही है)—इस तरह वह प्राणोपर पडे हुए पर्देको हटा देता है ।) जीवनकी जडता, मोह और आलस आदिको दूर कर देता है ।) ।।३।। सुख और दु खके समय हृदयमें न जाने व्यथाके कितने झोंके लगते हैं !—उन्हें मैं किस तरह समझाकर कहूँ—मुझे उसकी भाषा

के उस पर चरण रखनेके लिये ही हुआ यह ठीक है, कमल भी खिला है और कामिनीका वहा आना भी निस्सन्देह है, परन्तु वह कामिनी है कौन ?—कविको नही मालूम एक अज्ञात युवतीको वह अपना सम्पूर्ण हृदय देनेके लिये बढा हुआ है । बढा हुआ ही क्यो,—हृदयका विकास मानो दानके लिये ही हुआ है—उस पर उस कामिनीका स्वत सिद्ध अधिकार है, हृदयवालेका जैसे वहा कुछ भी नही, जैसे युवती आकर कहे—"जब तक हृदय नही खिला था, तब तक तो वह तुम्हारा था, अब खुल कर हमारा है, चलो छोडो राह, जाने दो हमे अपने आसन पर ।" पाठक ध्यान दें—किस खूबीसे रवीन्द्रनाथ हृदयका दान करते हैं और वह भी एक उस युवतीको जिसके सम्बन्धमे वे कुछ भी नही जानते । हृदय खुल जाने पर सारी शोभा और सम्पूर्ण माधुरीका जग जाना बहुत ही स्वाभाविक है, इस पर वे कहते है—

"जेगे उठे सब शोभा सब माधुरि
पलके-पलके हिया पुलके पुरी ।"—

"कोथा होते समीरण
आने नव जागरण
पराणेर आवरण मोचन करे ।"

यहा उन्होने सिर्फ हवाकी करामात दिखलाई है कि वह अङ्गोका स्पर्श करके किस तरह उनमे नया जागरण—नवीन स्फूर्ति पैदा करती—प्राणो पर पडे हुए जड आवरणको हटा देती है, परन्तु आगे चलकर अपनी वासनाके साथ बाहरी प्रकृतिकी सहानुभूति दिखलाते हुए उन्होने चित्रण-कुशलताकी हद कर दी है—

"आमार वासना आजि
त्रिभुवने उठे बाजि,
कापे नदी वन राजि वेदना-भरे ।"

यहा महाकवि पत्तियो और लहरो को कापते हुए देखकर जो यह कहते हैं कि आज मेरी ही वासना का डका तीनो लोकमें बज रहा है

और इसीसे वन और नदियोंमें वेदनाका सचार दीख पडता है—वे काप रहे हैं, इससे कविता पूर्ण रूप से खुल जाती है, कवि-हृदयको विम्वित कर दिखानेके लिये एक वहुत ही साफ आइनेका काम करती है।

(संगीत—३)

"आजि शरत-तपने, प्रभात-स्वपने
कि जानि पराण कि जे चाय ॥ १ ॥
ओइ शेफालीर शाखे कि वलिया डाके,
विहग-विहगी कि जे गाय ॥ २ ॥
आजि मधुर वातासे, हृदय उदासे,
रहे ना आवासे मन हाय ! ॥ ३ ॥
कोन कुसुमेर आशे, कोन फूल वासे,
सुनील अकाशे मन धाय ॥ ४ ॥
आजि के जेनो गो नाई, ए प्रभाते ताई
जीवन विफल हय गो ॥ ५ ॥
ताइ चारो दिके चाय, मन केंदे गाय,
"ए नहे, ए नहे, नय गो !" ॥ ६ ॥
कोन स्वप्नेर देशे, आछे एलो केशे,
कोन छायामयी अमराय ! ॥ ७ ॥
आजि कोन उपवने, विरह-वेदने
आमारी कारणे केंदे जाय ॥ ८ ॥
आमि यदि गाइ गान, अथिर पराण,
से गान शुनाव कारे आर ॥ ९ ॥
आमी यदि गांथि माला, लये फुल-डाला,
काहारे पराव फुल हार ॥ १० ॥
आमी आमार ए प्राण यदि करि दान
दिवो प्राण तवे कार पाय ॥ ११ ॥
सदा भय हय मने पाछे अजतने
मने मने केहो व्यथा पाय ॥ १२ ॥

अर्थ —"आज शरदऋतुके सूर्योदयमें—प्रभातके स्वप्नकालमे जी न जाने क्या चाहता है ? ॥१॥ उस शेफालिका (हरसिङ्गार) की शाखा पर बैठे हुए विहङ्ग और विहङ्गी क्या जाने क्या कह-कहकर एक दूसरेको पुकारते है और उनके गानेका अर्थ भी क्या है ? ॥२॥ आज की मधुर वायु प्राणोको उदास कर देती है—हाय !—घरमें मन भी नही लगता ! ॥३॥ न जाने किस फूलकी आशासे किस सुगन्धके लिये मन नीले आसमान की ओर बढ रहा है ! ॥४॥ आज—न जाने वह कौन—एक अपना मनुष्य मानो नही है, इसीलिये इस प्रभातकालमें मेरा जीवन विफल हो रहा है ! ॥५॥ इसीलिये मन चारो ओर हेरता है, और जो कुछ भी उसकी दृष्टिमें आता है, उसे देखकर व्यथाके शव्दोमें गाते हुए कहता है—'यह वह नही है—वह (कदापि) नही !" ॥६॥ न जाने किस स्वप्नदेशकी छायामयी अमरावतीमें वह मुक्तकेशी (इस समय) है ! ॥७॥ आज न जाने किस- उद्यानमें वह विरहकी दिनोमें भरी हुई आती है, और मेरे लिये वहा से रोकर चली जाती है ॥८॥ मै अगर किसी सगीत की रचना भी करूँ—सगीतोकी माला गूथू, तो प्राणोंके अधीर होने पर वे सगीत—फिर मै किसे सुनाऊँगा ? ॥९॥ और अगर फूलोकी माला गूथू तो वह हार भी मै किसे पहनाऊँ ? ॥१०॥ अगर मै अपने प्राणोका दान करना चाहूँ तो किसके चरणोमें मै इन्हें समर्पित करूँ ॥११॥ मेरा मन सदा डरता रहता है कि कही ऐसा न हो कि मेरी त्रुटि से हृदयमें किसीको चोट लगे ॥१२॥

यह चित्र कविके उदास भावका है । जिस समय प्राणोंमें एक खोई हुई वस्तु के लिये मौन प्रार्थना गूजती रहती है, कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रार्थनाका आभास मात्र रहता है परन्तु क्यो और किसके लिये प्रार्थना होती है, यह बात प्यासे हृदयको नही मालूम होती । इस सगीतमें महाकविकी वैसी ही दशा है । शरदऋतुके स्वर्ण-प्रभातको देखते ही महा-कविके हृदयमें एक आकाक्षा घर कर लेती है । सौंदर्यके साथ आकाक्षा, पुष्पके साथ कीट, यह ईश्वरीय नियम है । इस नियमका वन्धन कविको

भी स्वीकृत है। मनुष्यकी सीमामें रहकर अपनी रागिनीको—अपने प्रकाश-को असीम सौन्दर्य में मिला देनेकी कुशलतामें रवीन्द्रनाथ अद्वितीय है। वे प्रत्येक वस्तु के साथ अपने हृदयको मिलाकर उसकी महत्तासे अपनेको महान करना जिस तरह जानते है, उसी तरह अपने हृदयकी भाषासे ससारके हृदयको मुग्ध कर लेना भी उन्हें मालूम है। उनके इस सगीत में उदास स्वर वज रहा है, यह उदासीनता शरतकालके स्वप्नसुन्दर प्रभातको देखकर आती है। इस उदासीमें प्राणोकी खोई हुई वस्तुका अभाव है और उसीके लिये मन आकाशके एक अन्जाने छोर मे उड़ जाता है। इस उक्तिकी स्वाभाविक छटा देखने ही लायक है। महाकविके मन की ही वात नही, मनुष्यमात्रके मनमें जव उदासीनताकी घटा घिर आती है, तव उस उच्चाटनके साथ वह न जाने किस एक अजाने देश में अपने हृदयको छोडकर उडता फिरता है। इस भावको महाकविकी भाषा किस अद्भुत ढगसे अदा करती है, देखिये—

> **"कोन कुसुमेर आशे, कोन फुल वासे,**
> **सुनील आकाशे मन धाय।"**

आसमानमें जिसके लिये मन चक्कर काट रहा है, कविको उसका परिचय नही मालूम। यह वात उसे आगे चलकर मालूम होती है—वह अपनी उदासीनताका कारण समझता है। परन्तु समझने से पहले मन हरेक वस्तुको पकड़कर, उसे उलट-पुलट कर देखता है, और उसे अपनी उदा-सीनताका कारण न समझ कर छोड देता या, जैसा स्वभावत. किसी भूले हुए आदमीकी याद करते समय लोग किया करते हैं—जो नाम या जो स्वरूप मनमें आता है वे प्राचीन स्मृतिके सामने पेश करते और वहांसे असम्मतिकी सूचना पाकर उसे छोड़ दूसरा नाम या दूसरा स्वरूप पेश करते है, जवतक स्मृति किसी नाम या स्वरूप को स्वीकृत नहीं करती तव तक इजलासके गवाहों की तरह नाम या रूप पेश होते रहते हैं। इस तरह की पेशी महाकविके उदास मनमें भी होती है, वे कहते हैं—

"आजि के जेनो गो नाई, ए प्रभाते ताई
जीवन विफल हय गो
ताइ चारि दिके चाय मन केंदे गाय,
'ए नहे, ए नहे, नय गो' ।"

जिसके लिये मन रो रहा है, उसकी सम्पूर्ण स्मृति महाकवि भूले हुए है—मनके सामने जिस किसीको वे पेश करते हैं उसके लिये मन कह देता है, "यह नही है, मै इसे नही चाहता ।" इसके पश्चात् महाकविको मचले हुए मनकी प्रार्थना-मूर्ति याद आती है और अपूर्व कवित्वमें भरकर वे अपनी भाषाकी तूलिका द्वारा उसे चित्रित करते है—

"कोन स्वपनेर देशे आछे एलो केशे
कोन छायामयी अमराय ।
आजि कोन उपवने विरह-वेदने
आमारि कारणे केंदे जाय ।"

कविकी प्रेयसी वह खुले बालोवाली किसी छायामयी अमरपुरीकी रहनेवाली है । अब इतनी देर बाद उसकी याद आई । साथ ही महाकवि अपने उच्चाटनकी मदिरा उसकी भी आखोमे छलकती हुई देखते हैं और स्वर उसके भी कण्ठसे सुनते है । वह वहा किसी उद्यानमें विरह-व्यथासे भरी हुई आती है और उनके लिये रोकर चली जाती है ।

उस विरह-विधुर-सुरपुरवासिनीकी याद करके महाकविको भाषाके धागेमे सगीत पिरोना बिलकुल भूल जाता है, वे इससे उदास हो जाते है, क्योकि जिन चरणोमें सगीतकी लडी उपहारके रूपमें रखी जाती है, वे उनसे बहुत दूर हैं—वहाँ तक उनकी पहुँच किसी तरह नही हो सकती इस हताश भावकी ध्वनिमें सगीत भी गूजकर समाप्त हो जाता है ।—व्यथाके बादल कुछ बूँद टपकाकर जलती हुई जमीनको और जला जाते है ।

(संगीत—४)

"लेगेछे अमल धवल पाले मन्द मधुर हावा
देखि नाइ कभु देखि नाइ एमन तरणी वावा
कोन् सागरेर पार होते आने
कोन सुदूरेर धन ।
भेसे जेते चाय मन;
फेले जेते चाय एई किनाराय
सव चावा सव पावा ॥ २ ॥

पिछने झरिछे झर-झर जल
गुरु गुरु देया डाके,
मुखे एसे पड़े अरुण किरण
छिन्न मेघेर फांके ।
ओगो काण्डारी, केगो तुमी, कार
हासी कान्नार धन ।
भेवे मरे मोर मन,
फ़ोन सुरे आजि वांधिवे यन्त्र
कि मन्त्र हवे गावा ॥ ३ ॥

अर्थ—"मेरे इस साफ और सफेद पालमे हवाके मधुर-मन्द झोंके लग रहे हैं, इस तरहमे नावका खेना मैंने कभी नहीं देखा ॥१॥ भला किस समुद्रके पारसे—किस दूर देशका धन इसमे खिंचा आ रहा है ?—मेरा मन वहा वह कर पहुँच जाना चाहता है, और साथ ही,—इधर—इस किनारे पर सारी प्रार्थना और सम्पूर्ण प्राप्तियोको छोड जाना चाहता है ॥२॥ पीछे झर-झर स्वरसे जल झर रहा है, मेघोमें गर्जना हो रही है, और कभी छिन्न बादलोंके छेदमे सूर्यकी किरणें मेरे मुखपर आ गिरती है, ए नाविक, तुम कौन हो ?—किसके हास्य और आंसुओंके धन हो ?

मेरा मन सोच-सोचकर रह जाता है, तुम आज किस स्वरमें बाजा मिलाओगे—कौन-सा मन्त्र आज गाया जायगा ? ।।३।।"

(संगीत—५)

"यामिनी ना जेते जागाले ना केनो,
वेला होलो मरि लाजे ।। १ ।।
सरमें जड़ित चरणे केमने
चलिव पथेर माझे ।। २ ।।
आलोक परशे मरमें मरिया
देख लो शेफाली पड़िछे झरिया,
कोन मते आछे पराण धरिया
कामिनी शिथिल साजे ।। ३ ।।
निविया बाचिलो निशार प्रदीप
उषार वातास लागी;
रजनीर शशी गगनेर कोने
लुकाय शरण मांगी !
पाखी डाकी बले—गैल विभावरी;
वधू चले जले लोइया गागरी,
आमी ए आकुल कवरी आवरी
केमने जाइबो काजे ।। ४ ।।"

अर्थ—"रात बीतनेसे पहले तुमने मुझे क्यो नही जगाया ? दिन चढ गया—मै लाजो मर रही हूँ ।।१।। भला बताओ तो—इस हालतमें जब कि मारे लज्जाके मेरे पैर जकड-से गये है, मै रास्ता कैसे चलू ? ।।२।। आलोकके स्पर्श मात्रसे मारे लज्जाके सकुचित होकर—वह देखो—शेफालिकाए (हरसिंगारके फूल) झडी जा रही है, और इधर मेरी जो दशा है—क्या कहूँ, अपनी इस शिथिल सज्जाको देख किसी तरह हृदय को समाले हुए हूँ ।।३।। उषाकी वायुसे बुझकर बेचारे निशाके प्रदीपकी जान

वची,—उधर रातका चाद आसमानके कोनेमे शरण लेकर छिप रहा है, पक्षी पुकार कर कहते है—"रात वीत गई", वगलमें घडा दवाये हुए वहुए पानी भरनेके लिये जा रही है,—इस समय मैं खुली हुई अपनी व्याकुल वेणोको ढक रही हूँ, भला वताओ तो—कैसे मैं इस समय काम करनेके लिये वाहर निकलू ?"

(संगीत—६)

"हेला फेला सारा वेला ए की खेला आपन सने ॥ १ ॥
एई वातासे फूलेर वासे मुख खानी कार पड़े मने ॥ २ ॥
आंखिर काछे वेड़ाय भासि,
के जाने गो काहार हासि,
दुटी फोंटा नयन सलिल रेखे जाय एई नयन कोने ॥ ३ ॥
कोन छायाते कोन उदासी
दूरे वाजाय अलस वांशी,
मने हय कार मनेर वेदना कैंदे वेड़ाय वांसीर गाने ॥ ४ ॥
सारा दिन गांथी गान,
कारे चाहि गाहे प्राण,
तरु तले छायार मतन वसे आछी फुल वने ॥ ५ ॥

अर्थ—"सव समय हृदयमें विरक्तके ही भाव वने रहते है, यह अपने साथ खेल हो रहा है ? ॥१॥ इस वातासमे, फूलोकी सुवास के साथ जिसकी याद आती है, वह मुख किसका है ? ॥२॥ आखोके आगे वह तैरती फिरनेवाली किसकी हँसी है जो दो वूद आसू इन आंखोके कोनेमें रख जाया करती है ? ॥३॥ वह उदासीन कौन है—दूर न जाने किस छायामे अलग भावने वसी वजा रहा है, जोमें आता है—हो न हो यह किसीके मनकी वेदना होगी—वासुरीके गीतके साथ रोती फिर रही है ॥४॥ दिनभर मैं संगीतकी लडियां गूंथा करता हूँ,—क्यों—किसे मेरा

हृदय चाहता है ?—किसके लिये गाया करता है ?—इस पेडके नीचे छायाकी तरह मैं किसके लिये फुलवाडीमें बैठा हुआ ? ॥५॥"

(संगीत—७)

"आमाय बाँधवे यदि काजेर डोरे
केन पागल कर एमन कोरे ? ॥ १ ॥
बातास आने केन जानी
कोन गगनेर गोपन वाणी
पराण खानी देय जे भरें ॥ २ ॥
(पागल करो एमन कोरे ॥)
सोनार आलो केमने हे
रक्ते नाचे सकल देहे ॥ ३ ॥
कारे पाठाओ क्षणे क्षणे
आमार खोला वातायने,
सकल हृदय लये जे हरे ।
पागल करे एमन कोरे ॥ ४ ॥"

अर्थ—'मुझे अगर तुम कार्योंके भागोंसे बाधना चाहते हो, तो इस तरह मुझे पागल क्यो कर रहे हो ? ॥१॥ मै भला क्या जानू कि क्यो वातास वह एक किस आकाशकी गुप्त वाणी ले आती है, फिर मेरे इन प्राणोको पूर्ण कर देती है ॥२॥ न जाने क्यो, किस तरह स्वर्ण-रश्मिया खूनके साथ मेरे तमाम देहमें नाचती रहती है ॥३॥ तुम किसे बार-बार मेरे खुले हुए झरोखेके पास भेजते हो ? वह मेरे सम्पूर्ण हृदयको हर लेता और इस तरह मुझे पागल कर देता है ॥४॥"

(संगीत—८)

"तोमारि रागिणी जीवन-कुञ्जे
बाजे जेन सदा बाजे गो ॥ १ ॥

तोमारि आसन हृदय-पद्मे
राजे जेनो सदा राजे गो ॥ २ ॥
तव नन्दन-गन्ध-मोदित
फिरि सुन्दर भुवने,
तव पद-रेणु माखि लये तनु
साजे जेन सदा साजे गो ॥३॥
सव विद्वेष दूरे जाय जेन
तव मङ्गल-मन्त्रे
विकाशे माधुरी हृदय वाहिरे
तवं संगीत-छंदे ! ॥ ४ ॥
तव निर्मल निरव हास्य
हेरी अम्बर व्यापिया,
तव गौरवे सकल गर्व
लाजे जेन सदा लाजे गो ॥ ५ ॥"

अर्थ —"मेरे प्राणोंके कुजमें मानो सदा तुम्हारी ही रागिनी वज रही है ॥१॥ मेरे हृदयके पद्मपर मानो सदा तुम्हारी ही आसन अवस्थित है ॥२॥ नन्दन-वनकी सुगन्धसे मोद मग्न तुम्हारे सुन्दर भवनमे मैं विचरण करता हूँ, ऐसा करो कि मेरा शरीर तुम्हारे चरणोकी रेणु धारण करके सजा हुआ रहे ॥३॥ सव द्वेप तुम्हारे मगल मन्त्रके प्रभावसे दूर हो जाय, तुम्हारे सगीत और छदोंके द्वारा तुम्हारी माधुरी मेरे हृदयमें और वाहर विकसित हो रहे ॥४॥ तुम्हारे निर्मल और नीरव हास्य को मैं सम्पूर्ण आकाशमें फला हुआ देखू, इस तरह तुम्हारे गौरवके आगे मेरा सारा गर्व लज्जित हो जाय ॥५॥"

(संगीत—९)

"सकल गर्व दूर करि दिवो
तोमार गर्व छाड़िवो ना ॥ १ ॥

सवारे डाकिया कहिव, जे दिन
पाव तव पद रेणु-कण ।। २ ।।
तव आह्वान आसिवे जखन
से कथा केमने करिव गोपन ?
सकल वाक्ये सकल कर्मे
प्रकाशिवे तव आराधना ।। ३ ।।
अत मान आमि पेयेछि जे काजे
से दिन सकलि जावे दूरे
शुधु तव मान देह सने मोर
वाजिया उठिवे एक सुरे !
पथेर पथिक सेओ देखे जावे
तोमार वारता मोर मुख भावे,
भव ससार वातायन-तले
वोसे रवो जवे आनमना ।। ४ ।।

अर्थ—मै अपना और सब गर्व दूर कर दूगा, परन्तु तुम्हारे लिये मुझे जो गर्व है, उसे मै कदापि न छोड़ूगा ।।१।। सब लोगोको पुकारकर मै कह दूगा जिस दिन तुम्हारी चरणरेणु मुझे मिल जायगी (तुम्हारी कृपाके मिलते ही मै दूसरोको पुकारकर उसका हाल उन्हें सुना दूँगा—तुम्हारी कृपा-प्राप्तिके लिये उनमें भी उत्साह भर दूगा ।) ।।२।। तुम्हारी पुकार जब मेरे पास आयेगी, तब उसे मै कसे गुप्त रख सकूगा ?—मेरे सब वाक्यो और सम्पूर्ण कार्योसे तुम्हारी पूजा प्रकट होगी ।।३।। मेरे कार्यसे मुझे जो सम्मान मिला है, उस दिन इस तरह के सब सम्मान दूर हो जायँगे, एकमात्र तुम्हारा मान मेरे शरीर और मनमे एक स्वरसे वजने लगेगा, चाहे रास्तेका पथिक क्यो न हो, पर वह भी मेरे मुखके भावसे तुम्हारा सदेश देख जायगा, जब इस ससार रूपी झरोखेके नीचे मै अनमना हुआ वठा रहूँगा ।।४।।"

(संगीत—१०)

अल्प लइया थाकि ताइ मोर
जाहा जाय ताहा जाय ॥ १ ॥
कणाटुकु यदि हाराय ता लये
प्राण करे हाय हाय ॥ २ ॥
नदी-तट सम केवलि वृथाई
प्रवाह आंकड़ि राखिवारे चाई,
एके एके वुके आघात करिया
ढेउ गुलि कोथा धाय ॥ ३ ॥
जाहा जाय आर जाहा किछु थाके
सव यदि दी सपिया तोमाके
तवे नाहीं क्षय, सवि जेगे रय
तव महा महिमाय ॥ ४ ॥
तोमाते रयेछे कतो शशीभानु,
कभु ना हाराय अणुपारमाणु
आमार क्षुद्र हारावन गुलि
रवे ना कि तव पाय ? ॥ ५ ॥

अर्थ.—"मै थोडी-सी वस्तु समेटकर रहता हूँ, इसलिये मेरा जो कुछ जाता है वह सदाके लिये चला जाता है । एक कण भी अगर खो जाता है तो जी उसके लिये हाय-हाय करने लगता है ।।२।। नदीके कगारोकी तरह सदा प्रवाहको पकड़ रखनेकी मै वृथा ही चेप्टा किया करता हूँ; एक-एक तरग आती है और मेरे हृदयको धक्का मारकर न जाने कहा चली जाती है । ।।३।। जो कुछ खो जाता है और जो कुछ रह जाता है, वे सव अगर मै तुम्हे सौंप दू, तो इनका क्षय न हो, सव तुम्हारी महान् महिमामें जगते रहें ।।४।। तुममे कितने ही सूर्य और कितने ही चन्द्र है, कभी एक कण या परमाणु भी नही खो जाता, क्या मेरी खोई हुई क्षुद्र चीजे तुम्हारे आश्रयमे न रहेंगी ? ।।५।।"

महाकवि रवीन्द्रनाथके भक्ति-सगीतकी वङ्गलामे वड़ी तारीफ है । वडे-वडे समालोचक तो यहाँ तक कहते है कि सगीतकाव्य लिखकर अपने

इष्टदेवको सन्तुष्ट करनेवाले बगालके प्राचीन कवियोमे रवीन्द्रनाथका स्थान बहुत ऊचा है, कितने ही भक्त कवियो के सगीत तो बिलकुल रूखे है, उनमें सत्य चाहे जितना भरा हो—दर्शनकी अकाट्य युक्तिसे उनकी लडियोमें चाहे जितनी मजबूती ले आई गई हो, परन्तु हृदयको हरनेवाली कविताकी उसमें कही बू भी नही है। रवीन्द्रनाथकी लडिया भक्तिके अमर सरोवरमें कविताकी अमृत लहरिया है। हृदयकी जो भापा अपनी वेदनासे उबलकर अपने इष्टदेवके पास पहुँचती है, उसमें एक दूसरी ही आकर्षण-शक्ति रहती है। रवीन्द्रनाथ हृदयकी भाषाके नायक है। उनकी आवेदनभरी भाषा जिस ढगसे निकलती है, जिस भावसे भरकर इष्टदेवके मदिर द्वारपर खडी होती है, उसमें एक सच्चे हृदयके साफ बिम्बके सिवा कुछ नही देख पडता।

इस सगीत के भी वही चित्र है जो रवीन्द्रनाथ कहते है—

"आमि सकल गरब दूर करि दिब
तोमार गरब छाडिब ना।"

उनके इस निवेदनमें हर एक पाठककी अन्तरात्मा उनके हृदयका स्वच्छ मुकुर और उसमे खुले हुए निष्काम भावको प्रत्यक्ष करती है।" मैं सब प्रकारका गर्व छोड दूगा, परन्तु तुम्हारा गर्व मुझसे न छोडा जायगा, इस उक्तिमें इष्टके प्रति—भक्तिकी कितनी ममत्वमयी प्रीति है!—पढ़ने वालेका हृदय बरबस उसे अपनायक दे डालता है। रवीन्द्रनाथ ईश्वरकी कृपा-दृष्टि स्वय नही ले लेना चाहते, वे दूसरोको उनकी कृपाका पात्र पात्र बनाना चाहते है। इसलिये वे कहते है—"जिस दिन मुझे तुम्हारी कृपा मिलेगी, उस दिन और को भी पुकारकर तुम्हारी कृपाका समाचार सुना दूगा।" इस वाक्यमें रवीन्द्रनाथके हृदयकी विशालता जाहिर है। इसकी पुष्टिमें वे एक युक्तिभी देते हैं। वह यह कि—"जब मेरे लिये तुम्हारी पुकार होगी तब उसे मै कसे छिपाऊँगा?—मेरी बाते और मेरे कार्य खुद तुम्हारी आराधना प्रकट कर देंगे।" प्रभुकी कृपा प्राप्तिका सवाद दूसरोको कैसी विचित्र युक्तिसे दिया जा रहा है!

परिशिष्ट

रवीन्द्र कविता-कानन के लिए रवीन्द्रनाथ की बँगला रचनाओ की कालानुक्रमिक सूची तैयार करते हुए बड़ा हर्ष होता है। विशाल भारत (रवीन्द्र-अंक, १९४२) के लिए मैंने स्वर्गीय व्रजेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय की रवीन्द्र ग्रन्थ-सूची के आधार पर एक ग्रंथ-सूची तैयार की थी। नीचे दी गई ग्रंथ-सूची विश्वभारती त्रैमासिक (अंगरेजी) के रवीन्द्र जन्मांक के आधार पर तैयार की गई है। आशा है हिन्दी के साहित्यिको, साहित्य के विद्वानों तथा विद्यार्थियों के लिए यह उपयोगी सिद्ध होगी।

कालानुक्रमिक ग्रंथ-सूची के आधार पर हमें किसी लेखक के चहुँमुखी विकास को समझने में आसानी होती है। दुःख की बात है हिन्दी में इस दिशा में उतना काम नहीं हुआ है। उदाहरणार्थ कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द की सारी कहानियों की कालानुक्रमिक सूची अभी तक हमारे पास नहीं है। हिन्दी में खोज का काम विश्वविद्यालयो और उसके वाहर भी तेजी से बढ़ रहा है। इसके लिए कालनुक्रमिक की सूची की कितनी आवश्यकता है यह कहने की आवश्यकता नहीं। मुझे पूर्ण आशा है कि विद्वान् और गंभीर विद्यार्थी इधर ध्यान देंगे।

स्वाधीनता कार्यालय,
कलकत्ता।

—महादेव साहा

रवीन्द्र ग्रन्थ-सूची

१८७८ :	कवि काहिनी	(कविताएँ)
१८८० :	वन-फूल	(कविताएँ)
१८८१ :	वाल्मीकि प्रतिभा	(सगीत नाटक)
	भग्न-हृदय	(पद्य नाटक)
	रुद्र छन्द	(पद्य नाटक)
	योरप प्रवासिर पत्र	(चिट्ठियाँ)
१८८२ :	संध्या संगीत	(कविताएँ)
	काल-मृगया	(संगीत नाटक)
१८८३ :	वउ ठाकुराणीर हाट	(उपन्यास)
	प्रभात संगीत	(कविताएँ)
	विविध प्रसंग	(गद्य, विविध)
१८८४ :	छवि श्रो गान	(कविताएँ)
	प्रकृतिर प्रतिशोध	(गद्य नाटक)
	नलिनी	(गद्य नाटक)
	शैशव संगीत	(कविताएँ)
	भानुसिंह ठाकुरेर पदावली	(कविताएँ, व्रजवुलि में)
१८८५ :	राममोहन राय	(निवन्ध)
	श्रालोचना	(निवन्ध)
	रविछाया	(गीत-सग्रह)
१८८६ :	कड़ि श्रो कोमल	(कविताएँ)
१८८७ :	राजर्षि	(उपन्यास)
	चिठिपत्र	(गद्य, विन्ध)

१८८८ :	समालोचना	(निवन्ध)
	मायार खेला	(सगीत नाटक)
१८८९ :	राजा ओ रानी	(पद्य नाटक)
१८९० :	विसर्जन	(,, ,,)
	मत्री अभिषेक	(निवन्ध)
	मानसी	(कविताएँ)
१८९१ :	योरप यात्रीर डायरी—खंड १	(निवन्व)
१८९२ :	चित्रागदा	(पद्य नाटक)
	गोडाय गलद	(गद्य नाटक)
१८९३ ·	गानेर वही ओ	
	वाल्मीकि प्रतिभा	(गीत-सग्रह)
	योरप यात्रीर डायरी—खड २	(निबन्ध)
१८९४ .	सोनार तरी	(कविताएँ)
	छोटो गल्प	(कहानियाँ)
	चित्रागदा ओ विदाय अभि-शाप	(नाटक)
	विचित्र गल्प, भाग १—२	(कहानियाँ)
	कथा-चतुष्टय	(कहानियाँ)
१८९५ :	गल्प-दशक	(कहानियाँ)
१८९६ ·	नदी	(लम्बी कविता)
	चित्रा	(कविताएँ)
	सस्कृत शिक्षा, भाग १—२	
	काव्य ग्रथावली	
१८९७ :	वैकुन्ठेर खाता	(गद्य नाटक)
	पंचभूत	(निबध)
१८९९ :	कणिका	(कविताएँ)
१९०० :	कथा	(कवितायें)

१६०० :	ब्रह्मोपनिषद	(निबंध)
	काहिनी	(कवितायें और लघु पद्य नाटक)
	कल्पना	(कवितायें)
	क्षणिका	(कवितायें)
	गल्प-गुच्छ	(कहानियाँ)
१६०१ :	ब्रह्म-मंत्र	(निबंध)
	नैवेद्य	(कवितायें)
	औपनिषद ब्रह्म	(ब्रह्मोपनिषद का संशोधित रूप)
	बांगला क्रियापदेर तालिका	(पुस्तिका)
१६०३ :	चोखेर बालि	(उपन्यास)
	कर्मफल	(कहानी)
	काव्य-ग्रंथ	(कविता और पद्य-नाटको का संग्रह नौ खंडो में)
१६०३-४ .	इङ्गरेजि सोपान	(पाठ्य-पुस्तक)
	स्वदेशी समाज	(पुस्तिका)
	रवीन्द्र-ग्रंथावली	
	शिवाजी उत्सव	(कविता)
१६०५ :	स्वदेश	(राष्ट्रीय कवितायें)
	बाउल	(राष्ट्रीय कवितायें)
	विजया-सम्मिलन	(राजनीतिक निबंध)
१६०६ :	आत्मशक्ति	(राजनीतिक निबन्धावली)
	भारतवर्ष	(राजनीतिक निबन्धावली)
	राजभक्ति	(राजनीतिक निबन्ध)
	देशनायक	(राजनीतिक निबन्ध)
	खेया	(कवितायें)
	नौका-डुबि	(उपन्यास)
१६०७ :	विचित्र प्रबंध	(विविध निबन्धावली)

	चरित्रपूजा	(जीवनी निवन्धावली)
	प्राचीन साहित्य	(साहित्य निवन्धावली)
	लोक साहित्य	(साहित्य निवन्धावली)
	साहित्य	(साहित्य निवन्धावली)
	श्राधुनिक साहित्य	(साहित्य निवन्धावली)
	हास्य-कौतुक	(हास्य रसात्मक रेखाचित्र)
	व्यग-कौतुक	(,, ,,)
१६०८	प्रजापतिर निर्वन्ध	(उपन्यास—चिरकुमार सभा का सशोधित रूप)
	सभापतिर श्रभिभाषण	(वगाल प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन, पावना में सभापति का भाषण)
	प्रहसन	(गोडाय गलद श्रौर वैकुन्ठेर खाता एक खड मे)
	राजा-प्रजा	(राजनीतिक निवन्धावली)
	समूह	(,, ,,)
	स्वदेश	(,, ,,)
	समाज	(सामाजिक निवन्धावली)
	कथा श्रो काहिनी	(कवितायें)
	शारदोत्सव	(नाटक)
	गान	(गानें)
	शिक्षा	(शिक्षा निवन्धावली)
	मुकुट	(नाटक, वच्चो के लिये)
१६०६	शव्दतत्व	(बगला भाषा तत्व निबन्धावली)
	धर्म	(धर्म निवन्धावली)
	शान्तिनिकेतन, १-८	(प्रवचन)
	इङ्गरेजी पाठ, १	(पाठ्य-पुस्तक)
	शिशु	(कवितायें)

	चयनिका	(काव्य-सग्रह)
	छुटिर पड़ा	(पाठ्य-पुस्तक)
	प्रायश्चित्त	(नाटक, वउठाकुरानीर हाट पर आधारित)
१६१० :	राजा	(गद्य-नाटक)
	शान्तिनिकेतन, ६-११	
	गोरा, १ और २	(उपन्यास)
	गीतिलिपि १,२,३	(गाने, स्वर लिपि के साथ)
	गीताञ्जलि	(गाने)
१६११ :	शान्तिनिकेतन, भाग १२	
	गीतिलिपि, ४-६	
१६१२ :	डाक-घर	(गद्य नाटक)
	धर्म-शिक्षा	(निवन्ध, धार्मिक शिक्षा पर)
	धर्मेर अधिकार	(निवन्ध, धर्म पर)
	शान्तिनिकेतन, भाग १३	
	आटटी गल्प	(छोटी कहानियाँ, वच्चो के लिये)
	गल्प चारिटि	(कहानियाँ)
	जीवनस्मृति	(सस्मरण)
	छिन्नपत्र	(चिट्ठियाँ)
	अचलायतन	(गद्य नाटक)
	पाठ संचय	(पाठ्य-पुस्तक)
१६१४ :	उत्सर्ग	(कवितायें)
	गीतिमाल्य	(गाने)
	गीतालि	(गाने)
	गान	(गाने)
१६१५ :	काव्य-ग्रंथ	(दस खडोमे नाटको और कविताओ का सग्रह)
	गल्प-सप्तक	(छोटी कहानियाँ)

१९१६ :	चतुरग	(उपन्यास)
	फाल्गुनी	(नाटक)
	घरे-बाइरे	(उपन्यास)
	वलाका	(कवितायें)
	परिचय	(निवन्धावली)
	संचय	(नवन्धावली)
१९१७ .	कर्त्तार इच्छाय कर्म	(राजनीतिक भाषण)
	गान	(गाने)
	धर्म सगीत	(गाने)
	गीत लेखा	(गाने, स्वरलिपि के साथ)
	अनुवाद-चर्चा	(पाठ्य-पुस्तक)
१९१९ :	वैतालिक	(गाने, स्वरलिपि के साथ)
	गीति-वीथिका	(गाने, स्वरलिपि के साथ)
	केतकि	(गाने, स्वर लिपि के साथ)
	जापान यात्री	(सफर का रोजनामचा)
	काव्य-गीति	
१९२० :	रूप रतन	(नाटक)
	गीत लेखा, २	(गाने, स्वर लिपि के साथ)
	पयला नम्बर	(छोटी कहानियाँ)
१९२१ :	ऋण शोध	(नाटक)
	शिशु भोलानाथ	(शिशु कवितायें)
	शिक्षार मिलन	(राजनीतिक निबन्ध)
	सत्येर आह्वान	(पुस्तिका)
१९२२ :	मुक्तधारा	(नाटक)
	वर्षा-मगल	(गाने)
	लिपिका	(गद्य रेखाचित्र)
१९२३ :	वसत	(सगीत नाटक)
	नव गीतिका १-२	(गाने, स्वर लिपि के साथ)

१९२५ :	मायार खेला	(गाने, स्वर लिपि के साथ)
	पुरवी	(कवितायें)
	संकलन	(गद्य सकलन)
	गृह-प्रवेश	(नाटक)
	प्रवाहिनी	
	देशेर काज	(भाषण)
	वर्षामंगल	(गाने)
	शेषवर्षण	(गीत सकलन)
	गीति चर्चा	
१९२६ :	आचार्यर अभिभाषण	(भाषण)
	शोघ-वोघ	(नाटक)
	रक्त करवी	(नाटक)
०	नटीर पूजा	(नाटक)
	ऋतु उत्सव	(ऋतु उत्सव नाटक सग्रह)
	संगीत गीताञ्जलि	(नागरी लिपि में गानो का सग्रह)
	गीतिमालिका, १	(गाने, स्वर लिपि के साथ)
१९२७ :	लेखन	(कवितायें)
	ऋतु-रंग	(गीति नाटक)
१९२८ :	शेषरक्षा	(गद्य नाटक)
	पल्ली प्रकृति	(भापण)
	वाल्मीकि प्रतिभा	(गाने, स्वर-लिपि के साथ)
१९२९ :	समवाय नीति	(भापण)
	परित्त्राण	(नाटक, प्रायश्चित्तका सशोधित रूप)
	यात्री	(भ्रमण)
	योगायोग	(उपन्यास)
	वर्षा-मंगल	(गाने)
	शेषेर कविता	(उपन्यास)

	तपती	(गद्य नाटक, राजा व रानी पर आधारित)
	महुआ	(कवितायें)
१९३० :	गीतिमालिका, २	(गाने, स्वर-लिपि के सथ)
	भानुसिंहेर पत्रावली	(चिट्ठियाँ)
१९३१ :	नवीन	(गीति नाटक)
	पाठ-परिचय २,३ और ४	(पाठ्य-पुस्तक)
	सहज पाठ, १ और २	(बँगला-पाठ)
	राशियार चिठि	(चिट्ठियाँ)
	गीतोत्सव	(सगीत कार्यक्रम, नये गानो के साथ)
	गीतवितान १ और २	(११२८ गानो का सग्रह, कालानुक्रमिक सजाया हुआ)
	वनवाणी	(गाने और कवितायें)
	संचयिता	(कविता-सग्रह)
	प्रतिभाषण	
	शाप मोचन	(गीति नाटक)
१९३२ :	गीतवितान, ३	(३५७ गाने का सग्रह)
	परिशेष	(कवितायें)
	कालेर-यात्रा	(दो लघु नाटक)
	पुनश्च	(गद्य कवितायें)
१९३३ :	दुइ बोन	(उपन्यास)
	विश्वविद्यालयेर रूप	(भाषण)
	शिक्षार विकिरण	(भाषण)
	मानुषेर धर्म	(भाषण)
	चन्डालिका	(नाटक)
	तासेर देश	(नाटक)
	बाँसुरी	(नाटक)

	विचित्रा	(३१ कवितायें, कवि द्वारा ३१ चित्रो के साथ)
	भारत पथिक राममोहन	(निवन्धावली)
१९३४ :	मालंच	(उपन्यास)
	श्रावण गाथा	(वर्षा-गान)
	चार अध्याय	(नाटक)
१९३५ :	शेष सप्तक	(कवितायें)
	वीथिका	(कविताये)
	स्वरवितान, १	(५० गानो की स्वर-लिपि)
	रूप रतन	(सशोधित सस्करण)
१९३६ :	शिक्षा स्वागीकरन	(निवध)
	नृत्य-नाट्य चित्रागदा	(उपर्युक्त नाटक का सगीतात्मक रूप)
	नृत्य-नाट्य चित्रागदार स्वर लिपि	(उपर्युक्त की स्वर-लिपि)
	पंच-भूत	(सशोधित सस्करण)
	प्राकृतिक	(भापण)
	पत्र पूट	(गद्य कविताये)
	छन्दा	(निवन्ध)
	श्यामली	(गद्य कवितायें)
	साहित्येर पथे	(साहित्य निवन्धावली)
	पाश्चात्य-भ्रमण	(योरप प्रवासीर पत्र १८८२ और योरप यात्रीर डायरी १८९३ का सशोधित संस्करण)
	विचित्र प्रवन्ध	(संशोधित सस्करण)
	स्वर-वितान, २	(५० गाने स्वर-लिपि के साथ)
	वागला शब्द तत्व	(सशोधित सस्करण)
१९३७ :	खाप छाड़ा	(हास्य रस की कविताये)
	से	(कहानियाँ)

	जापाने ओ पारसे	(भ्रमण)
	कालान्तर	(सामाजिक-राजनीतिक निबंधावली)
	विश्व-परिचय	(विज्ञान परिचय)
	छडा ओ छवि	(कवितायें, सचित्र)
	प्रान्तिक	(कवितायें)
१९३८ :	स्वरवितान, ३	(गाने, स्वर-लिपि के साथ)
	पथे ओ पथेर प्रान्ते	(चिट्ठियाँ)
	सेंजुति	(कवितायें)
	बागला-भाषा-परिचय	
	प्रहासिनी	(हास्य रस की कवितायें)
	अभिभाषण	(पुस्तिका)
	समाज	(सशोधित सस्करण)
	गीतवितान, १	(विषयानुक्रम से सजायें ६७३ गाने)
१९३९ :	गीतवितान, २	(८३५ गाने)
	नृत्य-नाटच चडालिका	(सगीत नाटक, स्वरलिपि के साथ)
	आकाश-प्रदीप	(कवितायें)
	नृत्य-नाटच श्यामा	(कथा ओ काहिनी के 'परिशोध' के आधार पर सगीत नाटक, स्वर-लिपि के साथ)
	पथेर सचय	(चिट्ठियाँ)
	अभिभाषण	(पुस्तिका)
	रवीन्द्रनाथेर वाणी	(भाषण)
	प्रसाद	(पुस्तिका)
	रवीन्द्र रचनावली, १-२	(ग्रथ सग्रह)
	अन्तर्देवता	(पुस्तिका)
१९४० :	स्वरवितान, ४	(गाने, स्वर-लिपि के साथ)
	नव जातक	(कवितायें)

	सानाई	
	चित्रलिपि	(कवितायें)
	छेले-वेला	(चित्र-सग्रह)
	तिन संगी	(सस्मरण)
	रोग शय्याय	(तीन छोटी कहानियाँ)
	रवीन्द्र रचनावली, ३-५	(कवितायें)
	रवीन्द्र रचनावली, अचलित सग्रह, खंड १	
१९४१ :	आरोग्य	
	जन्मदिने	(कवितायें)
	गल्पसल्प	(कवितायें)
	सभ्यतार संकट	(छोटी कहानियाँ)
	रवीन्द्र रचनावली, ६, ७	(भाषण)